अध्याय : तीन

पुरस्कृत महिला साहित्यकारों के उपन्यासों में वर्णित वैयक्तिक समस्याओं का अध्ययन

महिला साहित्यकारों द्वारा अलग-अलग समय में लिखे गए सभी उपन्यास विभिन्न विषय वस्तुओं के साथ कथा गढ़ता हुआ चलता है| समय सीमा अलग होने के बावजूद इनमें कई तरह की समानताएँ भी है, जिसका कारण यह है कि इनको लिखने वाले लेखक का परिवेश और कालदृश्य काफी आस-पास और समान रहा है| साथ ही ये सभी उपन्यास एक बड़े से युग परिवर्तन के बाद का भी हिस्सा कहे जा सकते है| इन सभी उपन्यासों का दौर विश्व पटल पर देखें तो भूमंडलीकरण के बाद और भारतीय परिप्रेक्ष्य में देंखे तो उदारवाद के बाद का है, केवल जिंदगीनामा निजीकरण के पहले लिखा गया उपन्यास है| भूमंडलीकरण ने कब लोगों की इच्छाओं को महत्त्वाकांक्षाओं में बदल दिया पता ही नहीं चला| आगे चल कर ये महत्त्वाकांक्षा अजनबियत, अकेलापन, घुटन, बेचैनी का सबब बनता गया| बाजारवाद ने मनुष्य को जितना संपन्न किया है उससे कहीं ज्यादा लोगों को विपन्न कर गया| हर तरह की सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के बाद उससे उत्पन्न समस्या ने आज पूरी मानव व्यवस्था को ही अपने चपेट में ले लिया है| जिस कारण मनुष्य इस विकृत हो चली व्यवस्था में कई तरह की चुनौतियों से हर दिन लड़ रहा है| इस लड़ाई में कुछ खुद को बचा लेते हैं तो कुछ अंत तक अपनी अकेली लड़ाई लड़ते-लड़ते ख़त्म हो जाते हैं| पुरस्कृत सभी उपन्यासों में समय सापेक्ष उत्पन्न ऐसी कई समस्याओं को रेखांकित किया गया है जो आज की मशीनी दुनिया की उपज है| जिसके तहत समाज में रहने वाले लोगों के आपसी मतभेद और उससे उत्पन्न मानसिक विकारों की एक लम्बी सूची सी बनती नजर आ रही है| इन तमाम मानसिक उथल-पुथल को लेखिकाओं ने अपने कथा लेखन में शामिल किया है|

3.1 अकेलापन और अजनबियत से जूझते लोग

अलगाव के लिए अंग्रेजी में 'एलिअनेशन' शब्द का प्रयोग किया जाता है| समय सापेक्ष एलिअनेशन के लिए कई तरह के शब्दों जैसे अजनबियत, अकेलापन, स्वान्तरण, कटाव, उदासीनता, विमुखता का प्रयोग किया जाता रहा| "एलिअनेशन' शब्द लैटिन शब्द 'एलिनिशियों' से बना है, जिसका अर्थ है हटाना या स्थानान्तरित करना| फ़्रांसिसी भाषा में इसे aliene और स्पेनी में alienado कहा जाता है|"[1] ये सभी शब्द आज के समय में लगभग एक ही अर्थ के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं| बर्तोल्त ब्रेख्त ने 1920 के आसपास में एलियनेशन को रुसी रुपवाद की ही अवधारणा बतौर डीफेमिलियराइजेशन (defamiliarijation) अपनाया है|

अजनबियत को समझाते हुए बच्चन सिंह इसके प्रयोग को चार अर्थ के द्वारा कुछ ऐसे विश्लेषित करते हैं- "पहला संपत्ति के स्थानान्तरण के रूप में, दूसरा विक्षेप के अर्थ में, तीसरा अंतरवैयक्तिक संबंधों के दुराव के अर्थ में और चौथा ईश्वर और मनुष्य के अलगाव के अर्थ में|"[2] अलगाव की परिभाषा विद्वानों ने समय सापेक्ष देते हुए भिन्न-भिन्न मत देने का प्रयास किया है| जिसमें कुछ विद्वानों ने इसे धर्मशास्त्र से भी जोड़कर देखा है| आगे कुछ विद्वानों के मतों से इसे समझने का प्रयास किया गया है जो निम्न हैं-

'फिक्ते' मानते है कि "अजनबियत भौतिक जगत और आध्यात्मिक जगत के बीच की खाई है| इस खाई को आध्यात्मिकता के द्वारा ही दूर किया जा सकता है|"[3]

'शिलर' "मनुष्य की कालिक स्थिति और प्रकृति के दुराव को एलिअनेशन कहते हैं|"[4] शुरू में तो 'हेगेल' ने इस समस्या को "द्वंद्वात्मकता के आधार पर समझाया पर अंततः वह भी आध्यात्मिक हो जाता है|"[5]

मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी मुख्यतः इन दो विचारधाराओं के द्वारा अजनबियत पर विस्तार से विचार किया गया है| मार्क्स अजनबियत को अनिवार्य नहीं मानते| इनका मानना है

कि - "यह सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति की देन है|"[6] इनके दूर होने पर अजनबियत भी दूर हो जाती है| लेकिन आगे चलकर कुछ विद्वानों ने मार्क्स से असहमति जताई है| मारकूजे मार्क्स से असहमति जताते हुए कहते हैं कि अजनबियत दरअसल एक मानसिक रोग है| इनका मानना है कि समृद्ध वर्ग के लोग भी अजनबियत से ग्रस्त होते हैं| अतः 'मारकूजे' "अजनबियत का संबंध अर्थ और समाज से कम और मन से अधिक जोड़ते हैं क्योंकि अजनबीयत, ऊब, आत्मविकृति, कुंठा,अवसाद आदि मनःस्थितियां पूंजीपतियों में कहीं अधिक पाई जाती हैं|.... अतः यह आधुनिक सभ्यता और संस्कृति का अभिशाप है|"[7]

प्रसिद्ध अस्तित्ववादी दार्शनिक 'हाइडैगर'(martin heidegger) अपनी किताब 'अस्तित्व और काल' में जीवन के दो रूप को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि - "एक जीवन वह जो स्वयं जिया और रूपायित किया जाता है, दूसरा वह जिसे सामाजिक दबावों के कारण जीने के लिए व्यक्ति विवश है| यह सामाजिक विवशताओं से भरा जीवन ही छद्म जीना है, अप्रमाणिक जीवन है|"[8]

'ज्यां पाल सार्त्र' ने अपनी पुस्तक 'अनस्तित्व' (Being and Nothingness, 1943) में लिखा है- "दूसरों के लिए जीने की अवधारणा ही अजनबियत है|"[9]

बैजनाथ सिंहल अपनी किताब 'अलगाव दर्शन और साहित्य में लिखते हैं - "अलगाव की सर्वसामान्य परिभाषा यही है कि अलगाव में व्यक्ति का भौतिक, आध्यात्मिक और मानसिक स्तरों पर जीवन के किसी पहलू, किसी अन्यगत भौतिक और अभौतिक संबंध या निज व्यक्तित्व बद्ध सामर्थ्य या विचार शक्ति से कट जाने का अहसास रहता है|"[10]

आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार- "अलगाव से अभिप्राय भावना तथा स्नेह संबंधों में उत्पन्न तनाव एवं अवसाद से है|"[11]

उपर्युक्त परिभाषाओं से इतना स्पष्ट होता है कि अलगाव एक ऐसा विघटन है जो स्थिति और सन्दर्भ सापेक्ष मनुष्य को गहरे और भीतरी स्तर पर एक विशेष प्रकार से कट जाने के आभास

से भर देता है| यह आभास उसे वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, एवं मनोवैज्ञानिक स्तरों पर आक्रांत करता है| साथ ही विवेचन से इतना स्पष्ट है कि अलगाव की कोई एक सर्वसमावेशी परिभाषा नहीं हो सकती है, लेकिन उसमें निहित सर्वसामान्य भाव को लिया जा सकता है| कहने का आशय यह है कि अलगाव को किसी एक निश्चित रूप में बांधकर नहीं देखा जा सकता है क्योंकि यह स्थितियों और जीवन के विविध रूपों की अनुरूपता विविध रूपों में सन्निहित है| हिंदी साहित्य में अस्तित्ववादी विचारधारा से प्रभावित लेखकों में 'मुक्तिबोध', 'अज्ञेय', 'कुंवर नारायण' मुद्राराक्षस आदि के लेखन में आत्मनिर्वासन की अनुगूंज साफ तौर पर देखी गई है| इसके बाद समकालीन साहित्य में तो अजनबियत लगभग हर रचना के विषय में किसी-न-किसी रूप में दिखाई जरूर पड़ता है| अतः आगे इन सभी भाव को लेखिकाओं के उपन्यासों के माध्यम से देखने का प्रयास किया गया है|

'जिंदगीनामा' भारतीय ग्रामीण परिवेश की कथा को दर्शाता है| भारत के ग्रामीण अंचल की सामाजिक व्यवस्था में पूरा अंचल एक परिवार की तरह जीवन व्यतीत करता है| ऐसे में जब कोई व्यक्ति स्वयं को इस संरचना में उपयुक्त नहीं पाता हो तो उसके मन का अजनबियत और अकेलेपन के बोध से भर जाना स्वाभाविक होगा| केन्द्रीय पात्र शाहनी संतान सुख न मिलने की वजह से खुद को उस सामाजिक संरचना से अलग-थलग महसूस करती है| एक तरफ तो उसके जीवन में किसी चीज की कमी नहीं लेकिन उसके कोई बच्चा न होने की वजह से वो खुद को अकेला और खाली पाती है| यहाँ मार्क्स के मत से इतर भाव को देखा जा सकता है| एक स्त्री के जीवन में मातृत्व भाव का अनुभव सबसे अहम होता है ऐसे में किसी भी स्त्री का इस सुख से वंचित रहना उसे अधूरेपन से भर देता है| अतः जब व्यक्ति उस सामाजिक ढाँचा से खुद को अलग पाता है तो उसके मन में इस तरह के अलगाव बोध का उत्पन्न होना सहज है| शाहनी खुद को इसी ढाँचे में न पाकर अकेलेपन से भर जाती है| किसी भी सामाजिक संरचना में परिवार निर्माण के मूल में संतान उत्पत्ति मुख्य है| ऐसे में इस संरचना से खुद को अलग पाकर शाहनी का जीवन

अलगाव बोध के भाव से ग्रसित हो जाता है जो सामान्य है| साथ ही इस प्रसंग से मार्क्स की मान्यता भी खारिज हो जाती है| उपन्यास में एक और प्रसंग आता है जहाँ शाहनी के उदास और बेचैन मन का वर्णन किया गया है| यह स्थिति तब पैदा हुई जब राबयाँ को लेकर शाहनी का मन कुछ क्षण के लिए अशांत हो उठता है| अपने पति के द्वारा बोले गए शब्द राबयाँ के लिए शाहनी को उदास करता है| किसी भी पारिवारिक संरचना में अपने पति का दूसरी स्त्री के लिए दिए गए तारीफ़ भरे शब्द चुभते हैं, और यही भाव उस स्त्री के लिए अलगाव बोध का कारण बनता है जो भाव शाहनी में कुछ क्षण के लिए उभरता हुआ दिखता है - "पेट पर बिछे रसीले मिश्री बोझ को संभल शाहनी चारपाई से उठी तो संग-संग दिल में हुलासी और उदासी घिर आई|"[12]

सामाजिक व्यवस्था के अन्दर जब एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति अलगाव का बोध हो तो वह उस समाज में व्याप्त हीनता और श्रेष्ठता को दर्शाता है| इस तरह के अलगाव बोध के कई कारण हो सकते हैं| जिसमें परिवार की प्रतिष्ठा को मुख्य रूप में देखा जा सकता है| इस संबंध में 'हीगल' विस्तार से चर्चा करते हुए लिखते हैं कि - "मानव ईश्वर की प्रतिछाया है इसलिए सभी मानव सामान्य हैं किन्तु जब यह मानव अपने अन्दर गलत सोच जैसे- ऊँच-नीच, हीनता-श्रेष्ठता आदि भावनाएँ विकसित कर लेता है तो एक मानव का दूसरे मानव से अलगाव हो जाता है|"[13] हीगल की इस मान्यता को 'जिंदगीनामा' के एक प्रसंग से समझा जा सकता है| उपन्यास में चाची मेहरी ऐसे ही हीनता और श्रेष्ठता भाव बोध का उदाहरण है| चाची मेहरी जब अपने परिवार की सोच से विपरीत जाकर अपने जीवन साथी का चयन करती है तो उनका परिवार पहले तो पूरी कोशिश करता है कि किसी तरह उसके पति के परिवारवालों को समाज में गलत बताकर अपने को श्रेष्ठ साबित कर सके| परन्तु ऐसा संभव नहीं हो पाता क्योंकि चाची मेहरी कोर्ट में अपने परिवार के द्वारा लगाये गए आरोपों को गलत बता कर पति का पक्ष स्वीकार करती है| ऐसे में उनका अपने पिता पक्ष के परिवार से हमेशा के लिए संबंध का ख़त्म होना उन्हें अलगाव बोध से भर देता है - "शाह से लुक-छिप रोती रहती| सौ झगड़े-फ़िसाद आपस के, पर री, ऐसी भी

क्या रंजिश कि जीते-जी मनुक्ख दर्शन-मेलों को सहक जाए!"[14] ऐसे उदाहरण पारिवारिक अलगाव बोध को समझाने में सक्षम है| अतः इस तरह सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर मनुष्य का एक दूसरे के प्रति हीनता अलगाव बोध का सबब बनता है|

'कलिकथा वाया बाइपास' उपन्यास वर्तमान में भूत और भविष्य को कई स्तरों पर समझने की कोशिश है| केन्द्रीय पात्र किशोर बाबू के माध्यम से उन सभी परिस्थितियों को दिखाया गया है जो समाज में व्याप्त था| उपन्यास की शुरुआत ही केन्द्रीय पात्र किशोर बाबू के अजनबियत भाव से होता है| आजादी से पहले और आजादी से बाद के बदलते सामाजिक ढाँचे में मनुष्य की मानसिक बेचैनी की सजीवता को किशोर बाबू के माध्यम से समझा जा सकता है| भारतीय सामाजिक नैतिक मूल्यों के निर्माण एवं उसके ह्रास से व्यक्ति मन में उत्पन्न अलगाव बोध भाव इस उपन्यास का मुख्य विषय माना जा सकता है| किशोर बाबू में यह अलगाव बोध दरअसल उनकी बाइपास सर्जरी के बाद देखा जाता है| उपन्यास का प्रथम पृष्ठ किशोर बाबू के बेचैन मनोदशा को दिखाने में सक्षम है - "कलकत्ते के लैंसडाउन रोड पर तेजी से दौड़ती गाड़ियों, बसों-मिनी बसों के धुएं, चीखते हॉर्न और ब्रेक लगाने की आवाजों के ठीक बीचों बीच किशोर बाबू आगा-पीछा न देखते हुए शहर के सबसे नए और सबसे महंगे रेस्तरां 'गोल्डन हारवेस्ट' के सामने से सड़क पार करते देखे गए|"[15] मनुष्य में इस तरह के भाव उत्पन्न होने के कई कारण हो सकते हैं यहाँ सामाजिक एवं पारिवारिक इन दो कारणों को मुख्य रूप में देखा गया है| स्वाधीनता संघर्ष, अकाल, भूखमरी, सांप्रदायिक हिंसा, स्त्रियों की दयनीय स्थिति इन सारी घटनाओं को जीते हुए किशोर बाबू बड़े हुए थे अतः इससे उत्पन्न गहरी संवेदना ने इन्हें अलगाव भाव बोद्ध से भर दिया|

उपन्यास में दो और ऐसे पात्र हैं, किशोर बाबू के ग्रेट ग्रैंड फादर रामविलास और उनकी भाभी जो अलगाव और अकेलेपन के घुटन से गुजरते हैं| बेटे केदार की मृत्यु के बाद रामविलास जी को यह अनुभव हुआ कि अचानक से उन्हें अपने पुत्र के खोने पर वैसी ही अनुभूति हो रही है

जैसे मृत्यु की होती है| साथ ही अपने बेटे को न समझ पाने का भी दुःख उन्हें अन्दर-ही-अन्दर खाली कर रहा था - "क्या पुत्र व्यक्ति का अपना ही हिस्सा होता है- जिसके मरने पर मृत्यु की वैसी ही पीड़ा का अनुभव पिता को होता है?"[16] किसी भी व्यक्ति के संतान को खोने का दुःख संसार का सबसे बड़ा दुःख होता है| रामविलास आज जब अपने बेटे के जाने के पश्चात् उसके लिखे हुए आलेख ढूढ़ रहे थे तो उन्हें कुछ नहीं मिला| वह जानना चाहते थे कि उनका बेटा क्या करता था, क्या सोचता था, क्या लिखता था| पर जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह सारी जानकारी उसके बेटे केदार के साथ ही चली गई| अकेलेपन से भरे हुए रामविलास बाबू एक-एककर उसकी किताबों को छूकर कुछ को उलट-पलट कर देखा, लिखने की मेज को छुआ ऐसा लग रहा हो जैसे अपने बेटे को महसूस कर रहे हों|

भाभी के अकेलेपन के बारे में याद कर किशोर बाबू अपने बर्ताव पर जितने शर्मिंदा थे उतने ही निराश भी| अपने द्वारा किये गए व्यवहार को याद कर कहते हैं कि किस तरह भाभी अपने आखिर के दिनों में बिलकुल अकेली हो गयी थी - "भाभी अपने अंत के दिनों में बहुत अकेलापन महसूस करने लगी थीं| नहीं?"[17] भाभी की लिखी एक पुरानी कॉपी पढ़ते हुए किशोर बाबू आत्मग्लानि से भर जाते हैं| कॉपी का एक पन्ना खोलकर अपनी पत्नी को पढ़ने कहते हैं| भावना और स्नेह संबंधों में आये अलगाव को पारिवारिक स्तर पर यहाँ भाभी के माध्यम से समझा जा सकता है| कैसे कोई एक खुशहाल परिवार में खुद को कटा हुआ और अकेला पाता है| भाभी ने अपने अकेलेपन के दर्द को शब्दों में उतार कर कॉपी में बंद कर दिया था - "जिंदगी के सफर में अकेले हैं हम|"[18] यह एक पंक्ति उनके जीवन की सच्ची तस्वीर को शब्दशः बयां करती है, जो अकेलेपन और अजनबियत से भरा हुआ था| पारिवारिक संरचना पर आधारित इस समाज में यदि कोई ऐसी समस्या से जूझ रहा है तो यह उस समाज के लिए चिंता का विषय है| अतः 'कलिकथा : वाया बाइपास' उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग हैं जो भावना एवं स्नेह संबंध में उत्पन्न अलगाव को कई स्तरों पर व्याख्यायित करता है|

पारिजात उपन्यास का नायक रोहन माँ की मृत्यु पश्चात् जब घर वापस लौटता है तो उसे सब अंजान सा लगा - "रोहन की आँखों के सामने माँ का चेहरा अचानक कौंध गया| हमेशा वह उसे लेने प्लेटफार्म पर बाबा के साथ खड़ी दूर से हाथ हिलाती उसे देखतीं और वह हँसता हुआ दरवाजे पर आन खड़ा होता..., मगर आज उसे लेने स्टेशन कोई नहीं आया|... भीड़ थी, मगर किसी का हाथ आज सरों के ऊपर लहरा नहीं रहा था|..... टी-स्टॉल पर पहुंचकर उसने चाय के लिए इशारा किया, फिर इधर-उधर देखने लगा| पहले इस शहर में दोस्तों और आशनाओं की भीड़ लगी होती| जिधर से गुजरो, सलाम, हाय, नमस्ते, राम-राम की आवाज़ों के साथ हँसी का आदान-प्रदान होता, लेकिन आज उसे कोई चेहरा न जान-पहचान का नज़र आया, न चाय वाले ने ही मुस्कुरा कर पूछा, कस भैया! बहुत दिनों बाद चक्कर लगाए हो, पढ़ाई मा मस्त रहे का?"[19]

आगे यही अजनबीपन का भाव रोहन के जीवन में अकेलेपन का सबब बन जाता है| पत्नी और बच्चे का साथ छूटने के बाद माँ का भी उसे छोड़ कर जाना रोहन को खालीपन से भर देता है| अब पिता के अलावा और कोई नहीं बचा जो उसका करीबी हो और पिता से पुत्र की नजदीकी वैसे ही हमारे समाज में कम ही देखी जाती है| बच्चे ज्यादातर माँ के करीब होते हैं ऐसे में माँ का न होना रोहन के लिए एक भारी सदमे से भरा हुआ नजर आता है - "माँ होतीं तो मैं दिल खोलकर सबकुछ कह देता| उनकी डांट-फटकार, उनका उलाहना और रोना-सब कुछ सुनता| वह सब मेरे लिए मरहम साबित होता| मेरे ज़ख्मों की सोजिश को कम करता| अब इन ज़ख्मों के साथ मुझे रहना पड़ेगा| यह घाव कभी नहीं भरेंगे, कभी नहीं भरेंगे|"[20]

मनुष्य मन कई तरह की वृत्तियों से घिरा हुआ है जिसमें निराशा को इनका मूल माना जाता है| समाज की परिकल्पना ही ऐसी है कि उसमें रहने वाले व्यक्तियों के आपस में प्रतिस्पर्धा का होना स्वाभाविक है| नए जमाने की होड़ ने लोगों को सोचने समझने का मौका कम दिया है, जिसमें लोग सिर्फ दौड़े जा रहे हैं| सब कुछ पाने की असीम इच्छा उसे सामाजिक रिश्तों से अलग कर देती है| जब व्यक्ति अपनी तय की गयी लालसा को हासिल नहीं कर पाता तो वह निराश हो

अन्दर ही अन्दर घुटता है| समाज में सफलता और असफलता दोनों का होना लाजमी है, कोई सफल होगा तो कोई असफल भी| इस तरह सफल व्यक्ति को देखकर असफल व्यक्ति का निराशा और बेचैनी से भर जाना स्वाभाविक है| 'पारिजात' उपन्यास में लेखिका ने अपने पात्रों के माध्यम से इस स्थिति का वर्णन काफी सरल शब्दों में किया है| आज घर की जो भी हालत है उसका दोषी रोहन खुद को ही ठहराता है और यह अपराध भाव उसे रह-रहकर बेचैन और निराश कर देती है| इसके लिए रोहन जो बाबा की किसी भी बात से कभी सहमत नहीं होता था, आज वो हर चीज उनके अनुसार करना चाहता है - "आपके साथ चलूँगा| कुछ देर ठहरकर रोहन ने कहा| उसको महसूस हो रहा था कि यह सब उसके कारण हुआ है| बुढ़ापे में बाबा को तन्हा उस इलाक़े में रहने जाना होगा, जहाँ कभी उन्होंने जाने का सोचा भी न होगा| मझधार में फँसी इस नाव को वह किन चप्पुओं की मदद से निकाले!"[21]

'मिलजुल मन' उपन्यास आजादी के तुरंत बाद के परिवेश की कथा है| उपन्यास में आजादी के बाद समाज में आए बदलाव को कई स्तर पर पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है| हिंदुस्तान एक तरफ जहाँ आर्थिक मंदी की मार झेल रहा था वहीं पूरी दुनिया दो विचारधारा को लेकर बंटी हुई थी| कुछ का रुख साम्यवादी की तरफ था तो कुछ घोर पूँजीवादी की तरफ| हिंदुस्तान के लिए 1952-53 वह दौर था जब पूरा समाज अर्थ को लेकर दुविधा ग्रस्त था| इस मंदी से निकलने की कश्मकश और नीतिगत विफलता से लोगों में मोहभंग की स्थिति पैदा हो गयी थी| अपने ही समाज में युवा दर-दर की ठोकरे खाने को मजबूर था| आजादी के सुनहरे सपने धीरे-धीरे धूमिल हो रहे थे, जो लगभग न के बराबर लोगों को समझ आ रहा था| पर उपन्यास में चमनदास जैसे कुछ काबिल और समझदार लोग भी हैं जो मौजूदा हालात को समझता भी था और समय-समय अपनी असहमति आम लोगों के सामने जाहिर भी करता था| साथ ही सरकारी नीतियों के विरोध में बोलना और पंडित नेहरु की विदेश नीति को ग़लत बताकर लोगों को लैक्चर दिया करते थे| कभी-कभी तो ऐसी स्थिति से माहौल सिर्फ गर्म होकर रह जाता लेकिन कभी सरकार के मुरीद

के हाथों पिट जाते| एक ऐसे ही पात्र का जिक्र लेखिका करती हैं जो मामाजी के रूप में इस उपन्यास में दर्शाये गए हैं| चमनदास (मामाजी) एक ऐसे पात्र का प्रतीक हैं जो या तो पागल की श्रेणी में गिना जाता है या बेवकूफ| मामाजी का सामाजिक अलगाव बोध तभी से शुरू हो गया जब से लोग उन्हें समझने की जगह भला-बुरा कहने लगे| समाज के इस बेवकूफ रवैये के प्रति उनका गुस्सा देखते ही बनता है, जब वो लोगों को एक तरफ से मार देने की बात करते हैं - "तुम्हारे जैसे जाहिलों ने ही इस मुल्क को तबाह किया है| एक वह ज़माना था, जब यहाँ शून्य इजाद हुआ था| एक आज का वक्त है| लोगों में बात करने की काबिलियत नहीं है| सबको एक लाइन में खड़ा करके गोली मार देनी चाहिए|"[22] इस तरह की मानसिक दशा लोगों में तब बनती है जब वह अत्यंत निराशा से भर जाता है| उपन्यास में एक प्रसंग में मामाजी नेहरु की नीतियों और विदेश गमन की निंदा करते हुए दिखाए गए हैं, जहाँ पर वह कहना चाह रहे थे कि आधे समाजवाद से किसी का कोई फ़ायदा नहीं होगा| पर विचारधारा से असहमति दिखाते-दिखाते हाथापाई कर लेना उनकी मनोदशा को साफ दिखाता है| आखिर में मामाजी इसी घुटन में ही अपनी पूरी जिन्दगी काट देते हैं, जो उन्हें स्व अलगाव व आत्म-निर्वासन की अवस्था डिप्रेशन पर पंहुचा चुका था| मामाजी की वैयक्तिक सामर्थहीनता से उत्पन्न अवसाद उन्हें समाज से कटा हुआ जैसा एहसास कराती है| यह अजनबियत और अकेलेपन का भाव उन्हें धीरे-धीरे बीमार कर देता है| 'मारकूजे' इस तरह के अजनबियत को "आधुनिक सभ्यता का फल कहते हैं और इसको थेरेपी के द्वारा ठीक किया जा सकता है|"[23]

'नाला सोपारा' मनुष्य की मनुष्यता पर प्रश्न करता हुआ थर्ड जेंडर पर केन्द्रित उपन्यास है| इसका केन्द्रीय पात्र 'बिन्नी', उर्फ़ 'बिनोद' उर्फ़ बिमली के मर्मान्तक पीड़ा को आधार बना कर लिखा गया उपन्यास है| अपने ही घर से निकाल दिए जाने पर बिनोद के मन में उत्पन्न अवसाद उसे समाज और परिवार के प्रति अलगाव भाव से भर देता है| जब तक वह समझ पाता कि किन कारणों से वह अपने समाज और परिवार से काट दिया गया तब तक उसे किसी दूसरे समाज का

हिस्सा बना दिया गया था| यह नया समाज और परिवार उसके लिए अजनबियत और अकेलेपन का सबब बनता है| जिसे स्वीकारना बिनोद के लिए नामुमकिन सा था| यह सामाजिक संरचना बिनोद को अलगाव बोध से भर देता है| नए और पुराने पते के बीच फंसी उसकी जिन्दगी उसमें भ्रम पैदा करती है| वह समझ नहीं पाता उसका अपना क्या है - "मेरे घर का पता क्या कहीं कोई है बा? कैसी विभ्रम की स्थिति में जीता हूँ मैं...|"[24] इस उपन्यास में अकेलेपन का भाव दो पात्रों में बराबर से देखा गया है, एक बिन्नी और दूसरी उसकी बा बंदना बेन शाह| एक माँ का अपने पुत्र से विरह की पीड़ा को और एक पुत्र का अपनी माँ से अलग होने पर उत्पन्न तनाव दोनों को अकेलेपन की भूमि पर एक साथ ला देता है|

बिन्नी उस संवेदनशून्य समाज का प्रतीक है जहाँ इंसान के जज्बात की कद्र नहीं की जाती है| यह वही समाज है जो किन्नरों से दुआ और आशीर्वाद लेते नहीं थकता है, परन्तु जब इन्हें समाज का हिस्सा मानने को कहा जाए तो ये उन्हें घृणा की नजर से देखते हैं| जब बिन्नी को उसके घर और उसकी माँ से छीनकर अलग किया गया था तब वो सिर्फ 14 साल का बच्चा था| उसके कोमल ह्रदय पर इस तरह की घटना का क्या असर पड़ा होगा अंदाजा लगाया जा सकता है| बिन्नी जैसे-जैसे बड़ा और परिपक्व होता गया समाज की चाल समझता चला गया| एक चीज थी जिसे लेकर बिन्नी हमेशा से एक तरह के एहसास से गुजरता था वो था उसका ज्योत्सना से प्रति निश्छल प्रेम| अपनी माँ को पत्र में अपने प्रेम की प्रकृति को बताकर समाज की बेबुनियादी संरचना को तोड़ता हुआ नज़र आता है| समाज की संरचना का मुख्य आधार प्रजनन को माना गया है, लेकिन यहाँ लेखिका ने बिन्नी के माध्यम से प्रेम को सबसे ऊपर रखा है| परन्तु समाज इस तरह की बातों को बेबुनियाद और निम्न दर्जे का मानता है और ऐसे लोगों को समाज का हिस्सा नहीं मानती जो संतान की उत्पत्ति न कर सके| ऐसी स्थिति को देखते हुए बिन्नी का मन समाज के प्रति अलगाव और अजनबियत से भर जाता है, और वह घुटता हुआ महसूस करता है - "कभी-कभी मैं अजीब सी अंधेरी बंद चिमगादड़ों से अटी सुरंग में स्वयं को घुटता हुआ पाता हूँ|

बाहर निकलने को छटपटाता मैं मनुष्य तो हूँ न ! कुछ कमी है मुझमें इसकी इतनी बड़ी सजा !"[25] अपने अधूरे शरीर से पूर्ण प्रेम की आकांक्षा लिए बिन्नी समाज की पंगु मानसिक प्रवृत्ति को अपनी पूरी ताकत से पीछे धकेलता है|

पूरा उपन्यास बिन्नी के द्वारा अपनी बा को लिखे गए सत्रह पत्रों का संकलन है| हर पत्र के आखिर में बिन्नी अपनी बा को पगे लगूं लिखते हुए संबोधित करता है| जिस संबोधन के द्वारा वह अपने आप को प्रस्तुत करता है दरअसल वह सभी नाम सिर्फ नाम मात्र नहीं हैं| बल्कि हर नाम के बाद 'उर्फ़' उसके सामाजिक संरचना पर चोट भी है और उसके मानसिक उथल-पुथल का उदाहरण भी| पहले पत्र में प्रयुक्त संबोधन "तेरा बिन्नी उर्फ बिनोद उर्फ बिमली" बा से उसकी नाराजगी और लगाव दोनों को दिखाता है, साथ ही अब वह एक और नाम से जाना जाता है माँ को बताने का एक अतिसाधारण प्रयास है| एक तरफ जहाँ वह अपनी बा से ऐसा अनर्थ क्यों हो जाने दिया कह कर प्रश्न करता है वहीं दूसरी तरफ माँ और परिवार की फ़िक्र भी करता है| दूसरे पत्र में 'तेरा दीकरा' जोड़ना कोमल मन में रह रहकर घर की, परिवार की याद को दिखाता है| यह स्थिति अकेलेपन से ग्रसित मन की निशानी है, जो बिनोद में रह-रहकर एक टीस की तरह उठता दिखाई देता है| धीरे-धीरे यह संबोधन 'तेरा दीकरा, बिन्नी' पर आकर ख़त्म होता है| यह संबोधन का सिलसिला आखिर में सिर्फ एक माँ और बेटे के बीच के संबंध पर आकर ठहरता है| जो उसे उसकी माँ से मिलने की खुशी के क्षण को बयाँ करता है|

जिन्दगी जिसे लोग किसी खुबसूरत कल्पना जैसा जीना चाहते हैं वैसी वो होती नहीं है| हक़ीकत में जिन्दगी न सिर्फ जटिल है अपितु कभी-कभी निर्मूल्य प्रतीत होती है| महत्त्वाकांक्षा की गोद में जकड़ा हुआ जीवन इन्सान को बिल्कुल अकेला कर दिया है| ऐसे में जिन्दगी शोर से अचानक सन्नाटे में कैद हो जाती है, जो उसे अजनबीयत और अकेलेपन से भर देती है| लेखिकाओं के उपन्यासों में ऐसे कई प्रसंग हैं जिन्हें ऊपर इसी सन्दर्भ में दिखाने का प्रयास किया गया है|

3.2 पलायन व विस्थापन की समस्या

पलायन का वैज्ञानिक रूप स्पष्ट करते हुए 'धीरेन्द्र वर्मा' अपनी किताब 'हिंदी साहित्य कोश'(भाग-1) में लिखते हैं कि - "यदस्ति'(जो है) से यन्नास्ती(जो नहीं है नवीन) की ओर जाने वाली प्रवृत्ति को पलायन कहते हैं| यह आधुनिक उत्क्रांतिवाद(ऐमर्जेंट एवोल्यूशन) की विचारधारा है, जो प्रकृति और पुरुष में विकास तथा उत्तरोत्तर नवीन रूप के आविर्भाव को पलायन प्रवृत्ति का परिणाम मानती है| मानव स्तर पर असंतोष इसी का दूसरा रूप है|"[26] पलायन हमारे समाज में काफी लम्बे समय से चली आ रही समस्याओं में से एक है| लोग गुजर-बसर करने के लिए एक जगह से दूसरे जगहों पर जाया करते हैं| इसके इतिहास में झाँककर देखें तो अंग्रेजों द्वारा पहले के समय में आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों को बंदी बनाकर एक जगह से दूसरी जगहों पर काम कराने के उद्देश्य से ले जाया जाता था| फिर धीरे-धीरे लोग कुछ समय पश्चात् स्वयं ही बेहतर काम की तलाश में एक शहर से दूसरे शहर आने-जाने लगे| इसमें एक बड़े तबके के रूप में खेतों और फैक्ट्रियों में काम करने वाले मजदूर वर्ग को देखा जाता है| इसके बाद व्यवसाय और बेहतर शिक्षा के लिए एक जगह से दूसरे जगहों पर जाने वाले लोगों के रूप में विस्थापन को देखा जाता रहा है| इस तरह बड़ी संख्या में लोगों का पलायन करना उन्हें अपनी जन्मभूमि और अपनों से दूर कर रहा है| इसके अलावा प्रेम, विवाह एवं अपने समाज से बहिष्कृत होने पर लोगों का विस्थापन देखा गया है| बाद के समय में धीरे-धीरे विस्थापन का चलन बनता गया और लोग अच्छे अवसरों की तलाश की खोज में अपनी जड़ो से दूर होते चले गए| विस्थापन जो पहले समस्या के रूप में सामने आई थी बाद के समय में अवसर का रूप ले लिया| जिसे दो तरह से देखा गया है एक स्थायी और दूसरा अस्थायी| स्थायी विस्थापन में लोग हमेशा के लिए अपनी जन्मभूमि को छोड़ देते हैं तो वहीं अस्थायी में लोग कुछ समय के लिए अपनी जन्मभूमि से अलग होते हैं और फिर एक समयावधि के बाद वापस लौट जाते हैं इसमें उदाहरण के तौर पर मजदूर, व्यवसायिक, और

शिक्षार्थी को देखा जा सकता है| आगे पाँचों पुरस्कृत महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यास में इस सन्दर्भ को बराबर से दिखाया है| जिसका जिक्र आगे सन्दर्भ सहित किया जा रहा है|

'जिंदगीनामा' उपन्यास ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर लिखा गया है| विभाजन से पूर्व डेरा जट्टा गाँव के अंचल में एक-साथ मिलकर रहने की सुन्दर संस्कृति को यहाँ देखा जा सकता है| इस उपन्यास के मुख्य चरित्र के रूप में गाँव डेरा जट्टा को देख सकते हैं| अस्थायी विस्थापन या प्रवास के कुछ प्रसंग को यहाँ फौजियों के माध्यम से देखा जा सकता है| यहाँ उपन्यास में अस्थायी प्रवास के कारणों में से एक कारण अंग्रेजी हुकूमत की नौकरशाही द्वारा स्थानीय लोगों को फौज में भर्ती करने को उदाहरण के तौर पर दिखाया गया है| अंग्रेजी हुकूमत के समय भारतीय फौजियों को युद्ध और सुरक्षा के तौर पर एक जगह से दूसरी जगहों पर ले जाया जाता था| इसे हम आंतरिक अस्थायी प्रवास के रूप में देख सकते हैं| कई सालों बाद फौजियों के घर वापस आने की और इंतजार ख़त्म होने की ख़ुशी को कुछ ऐसे जाहिर करते हुए दिखाया गया है - "फौजियों, मुबारकें! मुबारकें हों, घर आने की मुबारकें! बादशाहो, पूरे तीन साल बाद दरस दे रहे हो| अपने लश्करों में दिलजोइयाँ ! धन्य हो, धन्य हो प्यारेयो !"[27] अपने घर-परिवार से इतने समय तक दूर रहना किसे अच्छा लगता है| चाहे कारण कोई भी हो अपने घर की याद अपनी जन्मभूमि छोड़ने का दुःख हर किसी को होता है - "क्यों जी बंदूकोंवालयो, खैरों से इतनी देरों बाद आए हो, अपना घर-पिंड तो पहचान लिया है न ! ...आप तो जानते हैं, फ़ौजी बन्दे दुनिया-जहान घूमने निकल जाएँ पर दिल अपना पोटली में बाँधकर अपने पिंड के पुराने रूख पर लटका जाते हैं !"[28]

बंगाल हमेशा से भारत के मुख्य स्थलों में से एक रहा है| किसी भी क्रांति एवं बदलाव का पहला प्रभाव यहाँ हुए नवजागरण को जाता है| अंग्रेजी राज, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और पश्चिमि संस्कृति के प्रभाव ने बंगाल के परिवेश को कई मायनों में प्रभावित किया| इससे यह हुआ कि यहाँ रोजगार के अवसर लोगों को खूब मिलने लगे| छोटे से लेकर बड़े व्यापारी, गरीब रिक्शा चालक से लेकर हर तरह के काम करने वाले मजदूरों तक के लिए यह शहर सुनहरे अवसर की तरह था|

'कलिकथा वाया बाइपास' उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग लेखिका अंकित की हैं जो आजादी से पहले और बाद रोजगार के लिए हुए विस्थापित लोगों की तस्वीर को उजागर करता है| रामविलास की पांच पुस्तों का कोलकाता शहर में आकर बस जाना स्थायी विस्थापन या स्थायी प्रवास के रूप में देखा जा सकता है| हरियाणा और राजस्थान से आए मारवाड़ी परिवार का स्थायी पलायन और अन्य राज्य से आए मजदूर, रिक्शा चालक के अस्थायी पलायन को उपन्यास में जगह-जगह दिखाया गया है| उपन्यास में विस्थापन के कई रूप को दिखाया गया है, जिनमें कुछ को मज़बूरी और समस्या के स्तर पर दर्शाया गया है तो कुछ को अवसर के रूप में| कई बार छोटे शहरों से लोग बड़े शहरों की तरफ रुख मज़बूरी में करते हैं| घर की हालत ठीक करने कर्ज चुकाने आदि जैसे तमाम समस्याओं से निजात पाने के लिए लोग ऐसा कदम उठाते हैं| जिसमें उन्हें कई-कई वर्षों तक अपने घर परिवार से दूर रहना पड़ता है| कई बार तो लोग जब वापस अपने घर आते हैं तो बहुत कुछ बदल चुका होता है| कुछ की तो भरपाई भी नहीं हो पाती उन कमाये हुए पैसों से| उपन्यास में रामविलास जी अपनी माँ की छोटी मौसी के साथ हुई घटना को याद करते हुए कहते हैं कि किस तरह विस्थापन किसी के जीवन को पूरा खाली कर सकता है - "माँ की छोटी मौसी के पति शादी होते ही पूरब में दूर आसाम की तरफ रुपए कमाने निकल गए थे|... सोलह बरस बाद जब वे पिता का कर्ज चुकाने लायक पैसा इकट्ठा करके, अपनी जान सलामत लेकर, वापस देस लौटे, तब रास्ते में उन्हें अपनी पत्नी की अर्थी मिली| यदि गाँव का बूढा ठाकरां न होता तो न वे किसी को पहचानते और न कोई उनको पहचानता| तब वे विक्षिप्त से हो गए थे|"[29] अपने जीवन स्तर को सुधारने उसे बेहतर करने की लालसा ने उनसे उनका सबकुछ छीन लिया| विस्थापन से मिली इस पीड़ा को मौसा के आलावा और कोई समझ नहीं सकता|

आगे उपन्यास में रामविलास अपने पिता के अस्थायी प्रवास को याद करते हुए कहते हैं कि किस तरह उनके पिता कलकत्ता जाकर पैसा कमाते हैं ताकि घर की स्थिति को और बेहतर बना सकें| उनके पिता की भिवानी में एक बड़ी सी हवेली बनाने की ख्वाहिश थी| जिसकी वजह से

वह कलकत्ते में दिन-रात बिना आराम किये काम करते रहते हैं| जब घर आते तो कई दिनों तक सोते रहते| इस तरह के विस्थापन से लोगों के अपने परिवार में आये इस आन्तरिक पीड़ा को बखूबी समझा जा सकता है| इसमें व्यक्ति जिस परिवार की बेहतरी की सोच लेकर काम करता है उसी परिवार से वह धीरे-धीरे दूर होता चला जाता है| ऐसे में परिवार के लिए समय न होना व्यक्ति के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है| इस सन्दर्भ में लेखिका उपन्यास में लिखती हैं कि - "पिताजी की ख्वाहिश है कि भिवानी में वे एक बड़ी हवेली बनाएं| शायद इसीलिए वे कलकत्ते में दिन-रात काम करते हैं| एक मिनट आराम नहीं करते| दिवाली के दस दिन पहले जब घर लौटते हैं, तो तीन दिन लगातार सोये रहते हैं- अपनी थकान उतारने के लिए|"[30] एक तरह से अपने काम के प्रति ज्यादा लगाव को भी दिखाता है, जहाँ परिवार दूसरे स्थान पर अपने आप आ जाता है|

रामविलास का कलकत्ता जाना भी अच्छे अवसर और जीवन की बेहतरी की तरफ ही इशारा करता है| यहाँ समस्या से ज्यादा अवसर विस्थापन की वजह होता नजर आता है| अकाल के बाद उत्पन्न स्थिति और अपनी बीबी का बंबई प्रवासी भाईयों के पास देखी हुई अंग्रेजी घड़ी और टॉर्च-बत्ती के लिए ललचाना, साथ ही पिता का हवेली बनाने का सपना उसे विस्थापन के लिए प्रेरित करता है| लेकिन रामविलास इतना मजबूत कलेजे का इंसान नहीं है जो अपने परिवार से इतने समय तक अलग रह सके| असमंजस की स्थिति में रामविलास सोचता है - "लेकिन कैसे जाएगा वह - पत्नी, दस साल के इकलौते पुत्र, बाल-विधवा बहन चुनिया और इस देश की मिट्टी को छोड़कर? पता नहीं लोग कैसे मजबूत कलेजा करके परदेस चले जाते हैं|"[31] लेकिन पत्नी के द्वारा दी गई उलाहना बेटे के बेहतर जीवन और बेहतर भविष्य की दुहायी उसे कलकत्ता जाने के लिए विवश कर देती है| "तुम्हें तुम्हारी माँ ने अपने जैसा ही कमजोर-दिल बना कर रख दिया है| कहा ही गया है कि आदमी की उन्नति में छह बातें बाधक हैं- आलस, पत्नी-प्रेम, बीमारी, जन्मभूमि से लगाव, संतोष और कायरता| तुममें तो ये छहों गुण भरे हैं|... पंद्रह साल बाद हमारे केदार जैसा बेटा हुआ|.... क्या उसका मन नहीं करता कि विलायती कपड़े और घड़ी बांधे?"[32] अंततः रामविलास

अपना जी कड़ा करके परदेस जाने की ठान लेता है और कलकत्ते में प्रवास के बाद छब्बीस साल तक अपना जीवन व्यतीत करते हुए अपने प्राण भी वहीं त्यागता है|

विस्थापन किसी के लिए सजा की तरह होता है तो किसी के लिए स्वर्णिम अवसर की तरह| उपन्यास में रामविलास और उसके मित्र बसंतलाल की कहानी भी कुछ ऐसी ही है| जहाँ शुरू में रामविलास प्रवास के नाम से घबराया हुआ था बाद में वह कलकत्ते के जादू में खो जाता है| गंगा, कभी भी होने वाली बारिश, जिस तरह से जीवन जीना चाहते हो वैसा जियो| हर तरह से कलकत्ता रामविलास के लिए मायानगरी की तरह थी और बसंतलाल के लिए सजा - "बसंतलाल का निर्वासन तिल-तिल कर बीतता है| रामविलास का कलकत्ता वास दिन-ब-दिन उसके सिर पर सचमुच जादू की तरह चढ़ता जाता है|"[33] बसंतलाल अपनी इस दशा से बिलकुल भी खुश नहीं है वो इसे सजा की तरह मानता है| अपने घर-परिवार के साथ अपनी मिट्टी अपनी ज़मीन उसे बहुत याद आती है खासकर बारिश के समय| वह जल्द-से-जल्द पैसे इकठ्ठा कर वापस होना चाहता है| वह अपने निर्वासन को भगवान राम के निर्वासन के साथ जोड़कर कुछ ऐसे देखता है - "रामजी को चौदह बरस का बनवास मिला था, हमें न जाने कितने बरस का मिला है? जो भी है- चौदह बरस से तो एक दिन भी ऊपर मैं यहां नहीं रहूँगा| मेरी सजा की मोहलत जिस दिन पूरी हो जाएगी, उस दिन सारा कारोबार समेट लूंगा| घाटा हो या नफा|"[34]

'पारिजात' उपन्यास में भी प्रह्लाद दत्त, बशारत हुसैन, जुल्फिकार अली तीनों मित्रों का परिवार अच्छे अवसरों की तलाश में अपना गाँव छोड़ शहर की तरफ भागते हैं और उनके बच्चे विदेश की तरफ| इनका विस्थापन जहाँ आन्तरिक था वहीं इनके बच्चों का अपने देश से दूसरे देश की तरफ बाह्य विस्थापन को दर्शाता है - "शहरों में पैदा हुए इन तीनों मित्रों के दादा पढ़-लिखकर गाँव से शहर की तरफ़ निकले थे| नौकरी जब मिली तो वहीं रह भी गए|"[35] किसी समय में पलायनवाद एक समस्या हुआ करती थी, लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया लोग इसे अवसर से जोड़कर देखने लगे| आज के भाग-दौड़ भरी जिन्दगी में लोग समय के साथ कदम से कदम

मिलाकर चलना चाहते है| आज पीछे छूट जाने का डर पलायनवाद से ज्यादा भयावह है| 'पारिजात' में एक ऐसा प्रसंग आता है जहाँ आज के ज़माने के बच्चे पीछे छूटने के डर से पलायन करना ज्यादा श्रेयस्कर समझते है - "आप ही फ़रमाते थे कि जमीन खुदा की बनाई हुई है| सारी मखलूक एक हैं तो फिर जमीन का कोई हिस्सा परदेस क्यों हुआ? हम बाबा आदम के उसूलों और तौर-तरीक़ों को लेकर चलें डैडी, तो इस गलाकाट दौड़ में रौंद दिए जाएँगे| हमें ज़माने के साथ चलना होगा|"[36] आज लोग अपनी जड़ों से कट कर भी काफी खुश हैं, वैश्वीकरण के दौर की यह नायाब भेंट लोगों को सुनहरे उपहार की तरह नजर आया| लोगों को घुमक्कड़ी करना खूब पसंद आने लगा है, अतः जड़ों से खूंटे की तरह बंधकर जीवन नहीं जीना चाहते - "जड़ों से खूंटे की तरह लड़के कहाँ बंधने वाले थे| प्रह्लाद दत्त को छोड़कर दोनों की नौकरियाँ ट्रांसफर वाली थीं| जुड़ना, टूटना, फिर घुमक्कड़ी करना उन दोनों के परिवारों ने सीख लिया था|"[37]

'मिलजुल मन' उपन्यास आजादी के बाद के परिवेश को केंद्र में रखकर लिखा गया है| बदलाव का दौर शुरू हो चुका था| आजादी के बाद सबको खुले आकाश में साँस लेनी थी| अन्य देशों को यहाँ एक बड़ा बाजार दिख रहा था तो यहाँ के लोगों को कुछ न कुछ कर जाने की तड़प थी| हर कोई अपने मन मुताबिक जिन्दगी जीना चाहता था| समाज में आया यह अचानक बदलाव लोगों को कई तरह से प्रभावित कर रहा था| उपन्यास में स्त्री-पुरुष सबका स्वतंत्र व्यक्तित्व समय की मांग को दिखता है| जितना पुरुष अपने को समय सापेक्ष ढ़ालना चाह रहा था उतना ही स्त्री भी| उपन्यास के कुछ पात्रों में इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है - चमनदास मामा, मोगरा, गुलमोहर, मोगरा का पति जो विदेश भ्रमण के बाद भारत वापस आया था ये सभी पात्र समय के साथ जीवन जीने की कोशिश करते हैं| इस तरह से जीवन जीने के लिए सबने एक जगह से दूसरे जगहों पर जाकर जीवन जीना चुना| जिसमें कुछ ने परिवार के लिए विस्थापन को चुना तो कुछ ने अपने उसूलो के लिए|

सामाजिक संरचना के आधार पर स्त्रियों के जीवन में एक बार स्थायी विस्थापन या यूँ कहें पुनर्वास तो होता ही है, उनकी शादी के बाद| ऐसे ही कनकलता, गुलमोहर, मोगरा की शादी के बाद अपने पति के घर में रहना उनका स्थायी विस्थापन ही है| यह विस्थापन स्थायी होता है, जो लगभग सभी स्त्रियों के जीवन में घटित होता है| उपन्यास की मुख्य चरित्र के रूप में जहाँ ये सभी सशक्त हैं वहीं सामाजिक संरचना के इस रूप को सहज स्वीकार करती हैं|

'नाला सोपारा' उपन्यास में थर्ड जेंडर की सामाजिक स्थिति को प्रमुखता से दिखाया है| उपन्यास में जिस परिवार को केंद्र में रख कर कथा को गढ़ा गया है, वह एक गुजराती परिवार है| मुंबई जो आज के समय में सपनों नगरी हुआ करती है, वहाँ हर कोई अपने सपने पूरे करने के आता है| मुंबई पहले बम्बई हुआ करता था उस समय में भी यह भारत के कुछ प्रमुख महानगरों में से एक था, जो हर तरह से संपन्न था| शहर का विकसित रूप हर तरह के लोगों के लिए काम उपलब्ध कराता है| ऐसे में बिन्नी के परिवार के साथ उसके कई जान-पहचान के लोगों का मुंबई में आकर व्यवसाय करना साधारण बात थी| उपन्यास में ऐसे कई गुजराती परिवारों का जिक्र किया गया है, जो अच्छे अवसर की तलाश में मुंबई आये हुए हैं| उपन्यास में एक और महानगर दिल्ली की भी चर्चा की गयी है यहाँ भी लोग रोजगार की तलाश में अक्सर पलायन कर आते हैं| बिन्नी भी अपने नए समाज दिल्ली में ही लाया गया है| उपन्यास में दिखाए गए विस्थापित परिवार का अपनी संस्कृति को जिन्दा रखना उन्हें अपनी जड़ों से जोड़कर रखता है| यह आंतरिक विस्थापन भारत में काफी संख्या में देखी जाती है, जिसका मुख्य कारण पैसा और बेहतर शिक्षा है| महानगरों में हर तरह की सुविधा का होना अन्य शहर और गाँव के लोगों के लिए एक बेहतर अवसर की तरह होता है, जो उनके जीवन को और बेहतर बना सके| आज का दौड़ सुविधा भोगी है, जिसमें मनुष्य कम समय में ज्यादा से ज्यादा पाने की लालसा लेकर जीता है| इस तरह महानगर इन लोगों के लिए सपनों को पूरा करने का एक अच्छा अवसर प्रदान करता है|

अपनी जन्मभूमि और अपना देश छोड़ने का फैसला कई वजहों पर निर्भर करता है| पलायन के कई कारणों में युद्ध, प्राकृतिक आपदा, अवसरों की कमी आदि को मुख्य रूप से देखा गया है| महिला साहित्यकारों के उपन्यासों में पलायन के इन सभी कारणों को ध्यान में रखकर समझने का प्रयास किया गया है| कई बार कुछ छन्द ही सक्षम होते हैं किसी विशाल फलक को समझाने के लिए| 'मंगलेश डबराल' द्वारा 1992 में लिखी गयी कविता 'छूट गया है' में पलायन के दर्द को चंद पंक्तियों के माध्यम से महसूस किया जा सकता है - 'भारी मन से चले गए हम / तजकर पुरखों का घरबार/ पीछे मिट्टी धसक रही है/ गिरती पत्थर की बौछार/ थोड़ा मुड़कर देखो भाई/ कैसे बंद हो रहे द्वार/ उनके भीतर छूट गया है/ एक-एक कोठार|'

निष्कर्षतः यह विषय भारतीय समाज से कई स्तर पर प्रश्न करता दिखता है जिसका सही जवाब किसी के पास नहीं है| विस्थापन की चुनौतियों का किस प्रकार सामना किया जाए इसका कोई हल फ़िलहाल नजर तो नहीं आ रहा लेकिन भविष्य में ऐसी कामना की जा सकती है कि जो लोग अपनी जीविका या बेहतर शिक्षा के लिए विस्थापित हुए या पलायन करते हैं सरकार इस संबंध में कुछ समाधान निकाले|

3.3 रिश्तों का सिमटता दायरा

आज के समय में जितना रिश्तों में खुलापन आया है उतना ही उसमें सहनशक्ति की कमी हुई है| सहने से आशय यहाँ रिश्तों को आपस में समझने की क्षमता से है जो दिन ब दिन कमजोर होती जा रही है| हम जितनी जल्दी किसी के प्रति संवेदनशील होते हैं उतनी ही जल्दी आक्रामक भी हो जाते है| खुलेपन का यह नतीजा भयावह ही नहीं चितंनीय भी है| नए ज़माने में जहाँ लोगों ने अपने मन मुताबिक रिश्तों को बनाने की कोशिश की वहीं इच्छानुसार रिश्तों को तोड़ भी दिया| यह समय ठहराव की कमी से जूझता हुआ नजर आता है| आज का दौर पहले की तरह बिल्कुल नहीं रहा जहाँ लोग रिश्तों में बंधकर उसका सम्मान करें| आज हम जैसे-जैसे तकनीकी रूप से विकसित हो रहे हैं हमारी सहने की क्षमता उतनी ही कम होती जा रही है| इस तरह रिश्तों में खालीपन का होना और उसकी शाख का कमजोर होना लाजमी है|

आज आधुनिक दौर और वैश्वीकरण ने लोगों को जितना सशक्त किया है उतना ही मानवीय पहलू को क्षति भी पहुंचाया है| एक तरफ जहाँ बाजार के बढ़ते प्रभाव से लोगों के आर्थिक पक्ष मजबूत हुए हैं वहीं उनका भाव पक्ष कमज़ोर हुआ है| आधुनिक दौर में अर्थ की महत्ता इसलिए भी हो गयी क्योंकि आज का व्यक्ति किसी भी प्रकार के दबाव से खुद को मुक्त रखना चाहता है| कोई भी आज थोपी हुई जिन्दगी नहीं जीना चाहता| ऐसे में रिश्तों में खोखलापन और हल्कापन का होना सामान्य है| आज मानवीय मूल्यों में आई कमी का सीधा संबंध बाजार से जोड़कर देखा जाता है| समाज की वास्तविकता यह है कि बाजार ने पूरे विश्व को अपनी गिरफ्त में कर लिया है, जिससे हर परिवार प्रभावित हो चुका है| 'जिंदगीनामा' को छोड़कर यहाँ अन्य सभी उपन्यासों में इसके प्रभाव को सीधे तौर पर देखा जा सकता है| आगे ऐसी समस्याओं को सोदाहरण उद्धृत किया गया है|

'जिंदगीनामा' उपन्यास में आधुनिक दौर की थोड़ी बहुत झलकियाँ जरूर है, लेकिन उसका कोई बुरा असर समाज, मानव जाति और मानवता पर नहीं के बराबर देखा गया है| यहाँ उपन्यास

में सभी का एक साथ मिलजुलकर रहना दिखाया गया है| उपन्यास का कथानक खेतों और किसानों की किसानी से होता हुआ जमीन की मल्कियत के इर्द-गिर्द घूमता हुआ आगे बढ़ता है| परिवार रूपी गाँव में सब एक सामान हैं भी और नहीं भी| जिसकी जमीन है और जिसकी नहीं है दोनों सामाजिक तौर पर अलग तो हैं लेकिन पारिवारिक तौर पर एक| कहने आशय यह है कि ग्रामीण परिवेश में जहाँ जाति, धर्म, समुदाय के आधार पर सब अलग-अलग बंटे हुए हैं वो मिलकर एक साथ कैसे रह सकते हैं| उत्तर यह है कि यही भारतीय गाँव की संस्कृति है, एकसाथ मिलकर रहना|

'कलिकथा वाया बाइपास' में कई पीढ़ियों को सम्मिलित किया गया है| आजादी से पहले और बाद के हुए सामाजिक बदलाव से बदलते रिश्तों के स्वररूप पर प्रकाश डाला गया है| जहाँ आजादी से पहले संयुक्त और सम्मिलित परिवार की संरचना समाज में व्याप्त थी, वहीं धीरे-धीरे वैश्वीकरण के दौर तक पहुँचते-पहुँचते लोग एकल परिवार की संरचना पर आकर सिमट गए| जैसे-जैसे समाज का बुनियादी ढाँचा बदलता गया उससे उत्पन्न नये नैतिक मूल्य एवं विचार भी बदलते गए जिसका सीधा प्रभाव रिश्तों पर देखा गया| जीवन में आये तरह-तरह के दबाव ने रिश्तों को हर तरह से प्रभावित किया| उपन्यास में एक सामाजिक दबाव को हैमिल्टन साहब के तौर पर भी देखा जा सकता है| हैमिल्टन साहब के पिता 'लॉर्ड कर्जन' अंग्रेज और माता 'जयंती' हिन्दुस्तानी थी - "मैं आधा हिंदू ही हूँ रामविलास| मेरी माँ एक हिंदू औरत थी| वह बहूबाजार में फिरंगी काली के मंदिर के पास रहती थी| मेरी इंग्लेंड वाली माँ ने मुझे गोद लिया था| शायद बेमन से ही|"[38] समाज और अपनी पत्नी के दबाव में वे अपने बेटे को उसकी माँ से अलग कर देते हैं| कर्जन यह बात अच्छे से जानते थे कि न तो यह समाज उनके उस बेटे को स्वीकार करेगा न उनका अपना इंग्लैण्ड का समाज| इस तरह के संबंधों को लेकर समाज आज भी काफी संकीर्ण सोच रखता है| ऐसे में जब हिंदुस्तान अंग्रेजी हुकूमत के अधीन हो और लार्ड कर्जन के बंग-भंग को लेकर अंग्रेजों के प्रति लोगों के मन में नफरत का ज्वार भरा हो तो समाज ऐसे रिश्तों को कहाँ ही स्वीकार कर पाता|

उपन्यास में ऐसे और कई छोटे-छोटे प्रसंग हैं जो रिश्तों के सिमटते स्वरूप को दिखाता है| अमोलक को देखकर किशोर का अनदेखा करना इसी सामाजिक बदलाव और दबाव का उदाहरण है| अमोलक और किशोर बचपन से दोस्त हैं उनकी वैचारिकी में काफी असामनता है लेकिन यह उनके रिश्ते को कभी प्रभावित नहीं करता| जैसे-जैसे समय बदला किशोर की मानसिकता उसके प्रति कुछ पल के लिए बदलती जरूर है - "कल की ही बात है कि हरिसन रोड के पास उसने अमोलक को देखकर अनदेखा कर दिया|"[39] पहले तो किशोर ने अपनी हीन भावना अमोलक के सर मढ़ दिया फिर जब उसे संज्ञान हुआ कि वो खुद उसकी फटी हालत देखकर उससे बचना चाह रहा था तो उसे अपने किये पर पछतावा होता है| व्यक्ति मन में इस तरह के भाव उठने के कई कारण होते है जिसमें सामाजिक बदलाव को प्रमुखता से देखा गया है| इस प्रकार समाज के बदलते स्वरूप से रिश्तों का दायरा दिनोंदिन संकीर्ण और सिमट कर छोटा होता जा रहा है|

किशोर बाबू और उनके चचेरे भाई बनवारी के रिश्ते को देखकर आज के समाज का अंदाजा लगाया जा सकता है| बनवारी अपने घर में आर्थिक रूप से सबसे कमजोर था| उसपर उसने मारवाड़ी होते हुए एक बंगालिन से शादी कर ली जिसकी वजह से उसे अपने घर से निकाल दिया गया था| एक दिन बनवारी शादी के बाद किशोर बाबू से कुछ मदद के लिए गया था परन्तु उन्होंने मिलने से मना कर दिया - "दरबान ने उन्हें आकर बताया था कि बनवारी नाम का कोई आदमी उनसे मिलना चाहता है| रुपए मांगने आया होगा.... दरबान को यह बोलने कह दिया कि - बाबू बीमार हैं| किसी से नहीं मिलेंगे| .... बनवारी इशारा समझकर लौट गया था|"[40] इस तरह का व्यवहार रिश्तों के सिमटते दायरों को समझाने के लिए काफी है| आज के समाज में कोई हर तरह से संपन्न है तो कोई विपन्न इस तरह की स्थिति से ही रिश्तों का दायरा सिमटा जा रहा है|

'पारिजात' उपन्यास उस समय की कथा है जब पूरा विश्व एक सूत्र में बंधा हुआ प्रतीत हो रहा था| ऐसे में लोगों का एक देश से दूसरे देश में जाकर बसना आम बात थी| नवउदारवाद जैसे-जैसे अपने पैर पसारता गया दुनिया एक होती गयी| एक तरफ तो समय का यह नया लिया हुआ

करवट लोगों को हर तरह से सक्षम बना रहा था, तो वहीं दूसरी तरफ सामाजिक रिश्तों के बीच लम्बी खायी भी बना रहा था| इस नए दौर में रिश्तों के बुनियादी ढाँचे में काफी बदलाव आ गए थे| समाज जितना तरक्की कर रहा उससे रिश्तों पर हो रहे दुष्प्रभाव को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता| आज समाज में कई रिश्ते सिर्फ नाम मात्र ही बचे हुए है| रोहन और एलिसन का रिश्ता आज के दौर में सामान्य है अर्थात् किसी विदेशी से शादी करना कोई नयी बात नहीं है, लेकिन उस रिश्ते को निभाना अलग बात| दोनों के बीच के मतभेद और एक दूसरे के प्रति भाव आज के समय में रिश्तों के कमजोर शाख को दर्शाता है| आज का पढ़ा-लिखा वर्ग जहाँ हर तरह से आजाद ख्याल को लेकर चलता हो वैसे में इस तरह की स्थिति का होना दुर्भाग्यपूर्ण है| समाज ने जहाँ स्त्री-पुरुष को हर तरह से सशक्त किया हो वहां ऐसा व्यवहार अस्वीकार्य है| एलिसन का रोहन पर आरोप और बच्चे की कस्टडी अपने पास रखना एवं पिता और बेटे के बीच के रिश्ते को हमेशा के लिए ख़त्म कर देना असामाजिक है| साथ ही दोनों के बीच के मसले को आपस में न सुलझा कर कोर्ट पहुँचना रिश्तों के खोखलेपन को दिखाता है - “आठ साल का रिश्ता इस तरह भी तोड़ा जा सकता है? उसे जाना था तो यह बात साफ़ कह तो सकती थी| इस तरह इल्ज़ाम लगाकर मुझे दोस्तों के बीच बेइज्ज़त करके, न्याय के कठघरे में खड़ा करने के बाद उसे क्या मिला?”[41] कोई भी रिश्ता प्रेम और विश्वास से सींचा जाता है| ऐसे में किसी भी तरह की खींचतान रिश्ते को कमजोर ही करती है| आज इस बदलते समय में हर छोटी बहस का बड़ा रूप ले लेना एक-दूसरे के प्रति सम्मान के भाव की कमी को दिखाता है|

माँ और बच्चे का रिश्ता दुनिया के सब रिश्तों से ऊपर और निश्छल भाव से भरा हुआ होता है| इस रिश्ते को संसार भर में सबसे महत्वपूर्ण माना गया है| भूमंडलीकरण के दौर ने आज समाज को हर तरफ से प्रभावित किया हुआ है| पारिवारिक रिश्तों पर आधारित सामाजिक संरचना की बुनियाद पर इसके प्रभाव से उत्पन्न परिणाम को आज दौर में साफ-साफ देखा जा सकता है| फिरदौस जहाँ और उसके यूरोप में बसे बेटे और बहू से उसके कमजोर होते रिश्ते को यहाँ उदाहरण

स्वरूप देखा जा सकता है| जहाँ माँ अपने बच्चे से मिलने के लिए दिन-रात बेचैन रहती है वहीं बेटा मोनिस उन्हें समय और समाज की स्थिति की दुहाई देकर बात टाल देता है - "तुम कब आ रहे हो मेरे कलेजे ! ये आँखें तरस रही हैं| नो मोर डायलाग मॉम ! उस शहर की ठहरी जिंदगी में मुझे आकर मरना नहीं है|"[42] इस तरह बदलते दौर ने जहाँ रिश्तों की गरमाहट को ख़त्म कर दिया है, वहीं आज के युवा की अपरिपक्वता को भी रेखांकित करता है| आज युवा रिश्तों के दायरे को धीरे-धीरे कम करता जा रहा है, जो आज के समय की ही देन है|

'मिलजुल मन' उपन्यास आजादी के बाद हर तरह से समृद्ध होता हुआ नए दौर की ओर रुख करता दिखाई देता है| समाज अपनी बेहतरी के लिए दिनोंदिन नयी तरकीब की आजमाईश में लगा हुआ था| राष्ट्र के विकास में विदेशी कम्पनियों का स्वागत किया जा रहा था| जहाँ एक ओर समाज नयी उम्मीद के साथ करवट ले रहा था उसी क्रम में लोग अपनी-अपनी बेहतरी में लग गए थे| किसी को भी परिणाम से मतलब नहीं था, सब सिर्फ अपनी तरक्की में लगे हुए थे| ऐसे में व्यक्ति के लालच का बढ़ना लाजमी है| उपन्यास में रसिक लाला और उनके बड़े भाई के कमजोर रिश्ते की जड़ धन-संपत्ति थी - "बड़े और छोटे लाला की कहासुनी के पीछे, ज़ाहिर है, जायदाद रही थी|"[43] छोटे लाला के इंतकाल के बाद उनके असली चेहरे को देखा गया कि किस तरह सारी वसीहत और संपत्ति को अपने नाम करवा लिया| दो भाईयों के बीच रिश्तों की इस कड़वाहट को बदलते समय की देन कहा जा सकता है| बड़े भाई के द्वारा सारी संपत्ति को अपने अधीन कर छोटे भाई की पत्नी को रहने भर की जगह देकर इंसानियत को चुनौती देने का काम करता है| वहीं छोटी ललाईन के दामाद को जब पता चला कि उनके हिस्से कुछ नहीं बचा तो उन्होंने अपनी पत्नी का उसकी अपनी ही माँ से रिश्ता तुड़वा दिया - "माँ के हिस्से, कुल एक कोठी की कैफ़ियत जान, लड़की को मैके से हर रिश्ता तोड़ लेने का फ़रमान मिला|"[44] जीवन की बेहतरी के लिए पैसे कमाना अलग बात है, लेकिन दूसरों के धन पर नजर रखना और उसे पाने का लोभ होना अलग बात| अतः समाज आज ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ रिश्तों से ज्यादा पैसा

मायने रखने लगा है| यही कारण है कि धीरे-धीरे समाज में रिश्तों की बुनियाद कमजोर होती जा रही है|

'नाला सोपारा' उपन्यास उस समय लिखा गया जब समाज किन्नर जीवन के प्रति उदासीन था| ऐसे में जब कोई समाज व्यक्ति के किसी अंग को लेकर इतना संवेदन शून्य बर्ताव कर सकता है, तो उस परिवार कि दशा कैसी होगी जहाँ ऐसे बच्चे जन्म लेते हों| समाज को आज भी कई स्तरों पर प्रगतिशील होने की जरुरत है| जब समाज में एक से दिखने वाले लोगों के प्रति ऐसा कटु व्यवहार हो तो यह रवैया समाज के लिए जितना अशोभनीय है उतना ही चिंता का विषय भी| बिन्नी एक गुजराती बनिया परिवार का बच्चा है| गुजराती समाज में इनके परिवार का बहुत सम्मान किया जाता है| अभी तक समाज में सम्मान की जो परिभाषा चल रही थी वो दरअसल व्यक्ति की भावनाओं को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि पद और रुतबा के आधार पर किया जाता था| समाज अब तक इतना परिपक्व नहीं हुआ था कि वो अभी तक की चली आ रही परिभाषा से हटकर एक नई परिभाषा दे या उसमें छूटे हुए पहलुओं को जोड़ सके| ऐसे में उस समाज के लोगों की मानसिक स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है| अतः समय से पीछे चल रहे समाज में रिश्तों के बीच के खालीपन को समय-दर-समय देखा समझा जा सकता है|

आज का शिक्षित युवा जब किसी तरह के वहम में फँसता है तो यह उस समाज के लिए बेहद शर्मनाक बात होगी| बिन्नी का बड़ा भाई सिद्धार्थ की पत्नी जब गर्भवती होती है तो उसका मन कई तरह के वहम से घिर जाता है| डॉ. को बदल-बदल कर दिखाना और इस बात की पुष्टि करना कि बच्चा का सभी अंग सही से विकास कर रहा है या नहीं| जब वह अपने भाई को रोकने का प्रयास नहीं किया तो कहीं उनका बच्चा ऐसा हो गया तो वह क्या करेगा| इस तरह के वहम किसी भी संबंध को कमजोर करता है| और आखिर में सिद्धार्थ वहम की आड़ में स्वार्थ को साकार करता है अपना हिस्सा माँगकर| सिद्धार्थ का अपने घर को बिना एक पल सोचे छोड़कर जाना

आज के समय में रिश्तों की कमजोर शाख का उदहारण पेश करती है - "वहम की आड़ में उन्होंने बड़े कौशल से अपने स्वार्थ को नगद करने की चेष्टा की| उत्तरदायित्वों से विमुख होकर|"[45]

अतः आज का आधुनिक समाज ऐसे ही कई तरह की समस्याओं का सामना करता दिख रहा है|

3.4 स्वप्न का संघर्ष

तैंतीस संचारी भाव में से एक भाव 'स्वप्न' है| 'भरतमुनि' ने अपने नाट्यशास्त्र में स्वप्न को - "निद्रसमुत्थित" अर्थात् निद्रा से उद्भूत बताया है| इन्द्रियों का सम्मोह एवं स्वप्न में बोलना इत्यादि क्रियाओं से इसकी अभिव्यक्ति होती है| अतः निद्राग्रस्त पुरुष के विषयानुभव का नाम स्वप्न है|"[46]

स्वप्न की चर्चा करते हुए धीरेन्द्र वर्मा अपने कोश ग्रन्थ में लिखते हैं कि - "स्वप्न के दो पक्ष माने जाते हैं- प्रकट अंतर्वस्तु और गुप्त अंतर्वस्तु| प्रकट अंतर्वस्तु के अंतर्गत दृश्य, श्रव्य आदि वे समस्त मानस प्रतिमाएँ या बिम्बविधान हैं, जिनसे हमें दिखाई पड़ने वाले स्वप्न का निर्माण होता है| गुप्त अंतर्वस्तु में वे विचार, इच्छाएं और प्रेरणाएँ होती है, जिनको स्वप्न प्रच्छन्न रूप से व्यक्त करता है| स्वप्न की प्रक्रिया द्वारा गुप्त अंतर्वस्तु प्रकट अंतर्वस्तु में परिवर्तित हो जाती है| इस प्रकार प्रत्येक स्वप्न इच्छापूर्ति का साधन होता है|"[47] स्वप्न को समझने के लिए उसके प्रतीकों को समझना तर्कसंगत होगा| स्वप्न के अर्थ को जानने के लिए प्रतीक को जानना अनिवार्य है तभी उसकी व्याख्या हो सकती है| स्वप्न का आना या न आना व्यक्ति के जीवन से सीधे तौर पर जुड़ा है| आप क्या खाते हैं क्या पहनते हैं कहाँ जाते हैं कैसा जीवन जीते हैं पर ही पूर्णतः निर्भर करता है| स्वप्न जीवन की उन तमाम प्राकृतिक क्रियाओं में से है जिनका आना सहज है| यह एक स्वतः स्फूर्त क्रिया है जिसपर मानव की पकड़ नहीं होती है| लेकिन इसका न आना समाज के लिए सबसे बड़ा खतरा जरूर माना जाएगा|

मनोविश्लेषक 'सिगमंड फ्रॉयड' स्वप्न के मनोविज्ञान पर अपनी किताब में स्वप्न के प्रतीकों के अर्थ की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि - "स्वप्नों में अधिकतर प्रतीक लैंगिक या यौन प्रतीक होते हैं| इस प्रकार यह स्थिति होती है कि बहुत-सी कम काम में आने वाली बातों के लिए बहुत-से प्रतीक होते हैं, और इनमें से प्रत्येक चीज प्रायः समानार्थक बहुत-से प्रतीकों से प्रकट की जा सकती है|"[48]

'युंग' फ्रॉयड के सिद्धांत को एक सिरे से तो नहीं नकारते हैं लेकिन स्वप्न को सिर्फ लिबिडो से जोड़कर देखने को एकतरफा माना है| 'युंग' का मानना है कि स्वप्न का दायरा काफी विस्तृत है जो व्यक्तिगत और सामूहिकता पर निर्भर स्वप्न का समृद्ध और जटिल रूप प्रतिबिम्बित करता है| युंग ने स्वप्न को दो प्रकार से व्याख्यायित किया है - पहला उद्देश्यपरक दूसरा व्यक्तिपरक| उद्देश्यपरक दृष्टिकोण में जो वह है उसी सन्दर्भ में स्वप्न देखता है| तथा व्यक्तिपरक दृष्टिकोण में व्यक्ति एक पहलू का प्रतिनिधित्व करता है|

मनोविश्लेषकों के द्वारा दिए गए स्वप्न के प्रतीकों के अर्थ की चर्चा को रेखांकित करते हुए 'धीरेन्द्र वर्मा' ने अपने कोश ग्रन्थ में प्रतीकों को कुछ इस तरह समझाया है - "स्वप्न प्रतीकों में कुछ सर्वव्यापी होते हैं और कुछ व्यक्तिगत| राजा और रानी माता-पिता का और छोटे पशु भाई-बहन का प्रतिनिधान करते है| नग्न हो जाना आरम्भिक स्वमुग्धता का प्रतीक है| किसी स्त्री का पीछा करते हुए भयावह और विकराल घोड़े और सांड जैसे पशु शारीरिक बल और पुंस्त्व के प्रतीक है| विधवाएँ और अतृप्त काम स्त्रियाँ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित चोरों या डाकुओं को अपने ऊपर आक्रमण करते देखती है तो यह यह चोर और डाकू बलात्कारियों के प्रतीक होते है| स्वप्न में सबसे अधिक प्रतीक पुरुष-जननेन्द्रिय के मिलते है| सर्प, माला, कृपाण, मछली, चिड़िया, छड़ी, पेड़ का तना, खम्भे, मीनार, शिखर, सादृश्य युक्त फल और तरकारियाँ आदि शिश्न के प्रतीक है| इसी प्रकार जूते, गुफा, चूल्हे, खिड़कियाँ, दरवाजे, कमरे और उद्यान नारी-जननेन्द्रिय के प्रतीक है| जल और स्नान भी यौन प्रतीक है| जीना या सीढी रतिक्रिया का प्रतीक है|"[49]

स्वप्न के कई मतलब होते हैं| मनोविज्ञान के सन्दर्भ में अचेतन मन में हम जो भी देखते हैं उसका सीधा संबंध हमारे चेतन अवस्था से जुड़ा होता है| हमारी दैनिकी में जो भी घटता है स्वप्न का उससे सीधा वास्ता होता है| किसी चीज को पाने की इच्छा, कुछ करने की इच्छा, जो चाहा उसके न मिलने पर उसकी झुंझलाहट की इच्छा, समय की मार, जीवन की व्यथा सब का तालमेल स्वप्न से बैठा हुआ है| अतः लेखिकाओं के उपन्यासों में वर्णित स्वप्न को आगे समझने का प्रयास किया गया है|

'जिंदगीनामा' उपन्यास में ग्रामीण पृष्ठभूमि में रह रही शाहनी एक संपन्न परिवार से संबंध रखती है| शाहनी के जीवन की सबसे बड़ी व्यथा उसके स्त्रीत्व का अधूरापन है| ऐसे में शाहनी हर तरह का प्रयास करती है कि एक दिन ईश्वर की कृपा उसपर भी हो और वो भी मातृत्व भाव का आनंद प्राप्त कर सके| ऐसे में उसके चेतन मन की अवस्था को समझा जा सकता है, कि वो किस तरह की वेदना से गुजर रही होगी| पारिवारिक संरचना में जितना एक स्त्री का मन संतान के लिए व्यथित रहता है उतना ही एक पुरुष के लिए भी उसकी संतान से ही उसका जीवन पूरा होता है| ऐसे में शाह और शाहनी दोनों के जीवन की एक ही अधूरी इच्छा थी, जिसकी प्रतीक्षा दोनों एक लम्बे समय से करते आ रहे थे| ऐसे में दोनों के स्वप्न को समझना बेहद आसान होगा| उसके द्वारा देखे गए स्वप्न को समझा जा सकता है - "रब्ब खैर करे शाहजी, मैं तो आज बड़ा डर गई हूँ !... आज मुँह-अँधेरे मसीत के मोड़ पर बड़ी को देखा| झलमल करते कपड़े| साक्खयात देह ओढ़कर ....सोचा, तुम भरम करोगी- तुमसे कहा नहीं| पिछले पक्ख गौरजा मुझे भी सपने में आई|"[50] जाहिर सी बात है दोनों के स्वप्न में एक ही व्यक्ति का आना दोनों की एक सी मनःस्थिति को दर्शाती है| इस तरह के स्वप्न को युंग के अनुसार व्यक्तिपरक दृष्टिकोण के अंतर्गत समझा जा सकता है| जिसमें व्यक्ति एक पहलू के रूप में प्रतिनिधित्व करता है| यहाँ दोनों के सपने में एक व्यक्ति का आना उसके खाली जीवन का प्रतीक है|

'कलिकथा वाया : बाइपास' उपन्यास में स्वप्न को दो तरह से देखा गया है, एक खुली आँखों से दूसरा बंद आँखों से| इस सन्दर्भ में धीरेन्द्र वर्मा 'वाग्भट' के मत "सुप्तं निद्रायाः गढ़ावस्था" से असहमति जताते हुए लिखते हैं कि - "निद्रा में स्वप्न का होना आवश्यक है लेकिन कई बार स्वप्न भी इतने सजीव होते हैं कि उनका चित्र हमारे स्मृतिपटल पर अमर रहता है| जाग्रदवस्था में भी स्वप्न समान चित्त की दशा रहने पर भी यही संचारी हो सकता है (day- dreaming)| स्वप्न वास्तव में मानसिक अवस्था है| सामान्य निद्रा एवं निद्रा संचारी भाव से भी भिन्न है|"[51] किसी भी मनुष्य के मन पर जब कोई गहरा गाढ़ा घाव हो तो वह व्यक्ति सबकुछ के सामान्य होने के इंतजार में अच्छे समय को स्वप्न के माध्यम से पूरा करने की इच्छा करता है| किशोर का परिवार भी ऐसी ही एक गहरी वेदना से गुजरता है, जिसमें वो सबकुछ के सामान्य हो जाने का इंतजार करता है| किशोर को अपने से ज्यादा अपनी माँ की चिंता है जो पहले पति और अब अपने कलेजे के टुकड़े बड़े बेटे को खो चुकी है| वह नींद में भी अपनी माँ के स्वप्न की बात सोचता है - "पर सारी रात गहरी नींद में भी एक अनकहे दुःख का भार किशोर के दिल को चांपे रहता है| पता नहीं माँ क्या सोचती होगी नींद में- क्या नींद उसे सपनों की दुनिया में ले जा पाती होगी जहां सबकुछ ठीक है? कोई बड़ी मजबूत हवेली है और दो घोड़ो की रुनझुन करती बग्घी है, जो रोज शाम को ललित भैया को पूरे भिवानी शहर का चक्कर लगवा लाती है| या कि माँ भी उसकी तरह अब सपने नहीं देख पाती- न झूठमूठ कल्पना के और न बीते हुए सुनहरे कल के|"[52] स्वप्न में स्वप्न बुनना जीवन के अथाह खालीपन और वेदना को जाहिर करता है| इस तरह की स्थिति तब होती है जब व्यक्ति वर्तमान परिस्थिति से थक कर कुछ समय के लिए अपने स्वप्न के माध्यम से उसे ठीक करने की कोशिश करता है| किशोर बाबू भी एक ऐसे ही पात्र हैं जिन्होंने अपने जीवन की परेशानियों को अपने स्वप्न के द्वारा ठीक कर खुद को राहत पहुंचाते हैं|

उपन्यास में स्वप्न से संबंधित एक दूसरा प्रसंग आता है, जो किशोर के जीवन से सीधा-सीधा जुड़ा है| यहाँ किशोर के जीवन में बीते हुए तमाम उथल-पुथल से उत्पन्न स्थिति को देखा

गया है| यह स्वप्न युंग के उद्देश्यपरक दृष्टिकोण के अंतर्गत रखकर देखा जा सकता है - "इन दिनों वह रात-रात सपने देखता है| कई बार उसे सपने में ऐसा महसूस होता है कि वह एक ऐसे बिंदु पर पहुँच गया है जहां सारी समस्याएं ख़त्म हो गई हैं| ... सपने में वह कभी-कभी शांतनु को लंबे-लंबे भाषण देता है, कभी सत्यपालजी को लाइब्रेरी में बैठकर कुछ-कुछ कहता रहता है| कभी वह गली-गली भटकता है- टेढ़ी-मेढ़ी घूमती गलियों में चलते-चलते वह अमोलक का घर खोजता है और बार-बार घूम-फिरकर एक चौकोर तालाब तक पहुँच जाता है, जिसके पानी में माँ काली की भसान (विसर्जन) की हुई मूर्तियों के अन्दर का पात-भूसा तैर रहा है|"[53] इस तरह के स्वप्न के बारे में युंग कहते है कि जब व्यक्ति जो है उसी को संदर्भित करता है तो यह स्थिति उद्देश्यपरक दृष्टिकोण के अंतर्गत आती है| अतः यहाँ किशोर के स्वप्न में उसके जीवन के सभी सच्चे पात्र ही आते है| ऊपर के दोनों प्रसंगों में आये घोड़े और पानी स्वप्न के प्रतीक के अर्थ के आधार पर यौन के प्रतीक है|

इसी उपन्यास में कुछ अन्य प्रसंगों में लेखिका ने नींद के अन्य लक्षण को भी इंगित किया है, जिसे निद्रा पक्षाघात/लकवा कहा जाता है| अंग्रेजी में इसके लिए sleep Paralysis शब्द का प्रयोग किया जाता है| जिसका आशय यह है कि जब कोई व्यक्ति नींद में किसी तरह की प्रतिक्रिया करता हो और वह उसे करने में असमर्थ हो अर्थात् जब वो व्यक्ति उठना चाहता हो और उठ नहीं पाता हो, चिल्लाने का प्रयास करता हो पर आवाज नहीं निकलती हो आदि| इसकी अवधि काफी कम समय की होती है| मनोविज्ञान में यह उन लोगों में ज्यादा देखा गया है जिन्हें ज्यादा सोने की आदत होती है या जिनकी सोते समय साँस रुक जाती है| वैसे सामान्य तौर पर यह समस्या किसी को भी हो सकती है| किशोर बाबू की बड़ी मामी के मौत के बाद उनके मामा लोग घर बदलकर हरिसन रोड आ गए थे| जिसके बाद किशोर को अपने बड़े भाई की मौत का भय जब-तब सताता रहता था| इसका असर उनके स्वप्न पर साफ तौर पर देखा गया है - "किशोर को सिनेमा की तरह उस मकान में ललित भैया के मरने का दृश्य जब-जब याद आता है, उसका गला

मानो जकड़ जाता है- उसी तरह जैसे उसी मकान में एक दिन सपने में भूत ने उसकी छाती पर चढ़कर उसका गला दबा दिया था| उस भूत की बकरे जैसी दाढ़ी उसके गालों में चुभ रही थी किशोर ने बहुत कोशिश की थी कि उसको ढकेल कर अपना गला छुड़वा ले या किसी तरह पास में सोई हुई माँ या ललित भैया को आवाज दे दे| किन्तु उसके गले से कोई आवाज नहीं निकल रही थी और न ही उसके हाथ-पैर हिल सकते थे| उसके पूरे शरीर को जैसे लकवा मार गया था- बस उसके अंदर कोई अपने को बचाने के लिए पूरे दम से निःशब्द चीख रहा था| उसकी खुद क यह चीख उसके कानों में कहीं अतल से आती हुई सूं-सूं की ध्वनी में बदल जाती थी| उसे इस पूरे दौरान पूरा होश था - यहाँ तक कि उसने अपने मृत पिता से प्रार्थना की थी कि वे किसी तरह उसे बचा लें| उसे हनुमानजी भी याद आए थे जो उसे मालूम था कि भूत-प्रेतों से रक्षा करते हैं| और फिर अचानक ही वह प्रेतात्मा जो उसके सीने पर चढ़कर बैठी हुई दोनों हाथों से उसका गला दबा रही थी, गायब हो गई| बाद में धड़कते हुए दिल से उसने अपने सुन्न हो गए हाथों को हिलाकर करवट बदलकर माँ को देखा था, जो गहरी नींद में सो रही थी|"[54] किशोर बाबू को यह स्वप्न पूरा याद रहता है कि किस तरह वो उठने का प्रयास करते हैं पर उठ नहीं पा रहे हैं सबकुछ एकदम हकीकत जैसा था| स्वप्न जिसमें उठने के बाद हकीकत जैसा अहसास होता हो निंद्रा पक्षाघात/लकवा को दर्शाता है|

इसी उपन्यास में स्वप्न का एक और प्रसंग हैं जिसे इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है - "वह जंगल, पहाड़, नदियां फलांगता हुआ दौड़ा चला आ रहा है| उसके कैनवास के जूतों के नीचे धरती चरमरा रही है - सूखे पत्तोंवाली धरती| भागते-भागते अचानक उसके हाथ में कहीं से एक तिरंगा झंडा आ जाता है| उसे उस झंडे को बहुत दूर पहुंचकर किले की सबसे ऊपरी दीवार पर लगाना है| ....नहीं, वह रुक नहीं सकता| उसे अपनी जीभ पर खारे पसीने का स्वाद आता है| वह इतना थक गया है कि उसे लगता है कि वह किसी भी क्षण बेहोश होकर गिर जाएगा| अचानक कहीं से शांतनु प्रकट हो जाता है| उसका पसीना एक सफेद रुमाल से पोंछ देता है| उसकी पीठ

थपथपाकर उसके हाथ से तिरंगा झंडा ले लेता है| इतने में सुभाष बाबू बर्लिन रेडियो से अंग्रेजी में भाषण देते हैं और शांतनु उसकी आँखों में देखकर मुस्कुराता है| उठने पर दौड़ने की थकान तक मालूम पड़ती है- इतने असली हैं किशोर के सपने|"[55]

'पारिजात' उपन्यास में पात्र रूही के खाली जीवन और घुटन से उत्पन्न स्थिति को स्वप्न के माध्यम से समझा जा सकता है| इस उपन्यास में स्वप्न के प्रकट अंतर्वस्तु पक्ष को रूही के माध्यम से देखा जा सकता है| रूही हर तरफ से अकेली और निराश है| ऐसे में उसके स्वप्न की अवस्था क्या होगी अंदाजा कमोबेस लगाया जा सकता - "रूही उसी तरह बिस्तर पर बेदम-सी पड़ी रही| रात या कहो सुबह-सुबह देखा ख़्वाब उसके ज़ेहन में अभी भी चक्कर लगा रहा था| साँप, ढेरों साँप उसके चारों तरफ़ सरसरा रहे थे, जिन्हें देख वह डरकर चीखें मार रही है| तभी उसने देखा कि उन साँपों को खा रही है| टुकड़े कर-करके...यकायक उसे उबकाई आई और वह बाथरुम की तरफ़ तेज़ी से लपकी|"[56] यहाँ रूही का अकेलापन एक विसाद की तरह है जो उसके मन में रह रहकर टीस पैदा करता है| इतनी कम उम्र में इतना सब कुछ देखना कोई मामूली बात नहीं होती| ऐसे में उसके इस खालीपन को ऐसे स्वप्न आने लाजमी है - "बड़ा डरावना ख़्वाब था, बेहद डरावना अन्ना बुआ! रूही ने दुपट्टे को अपने चारों तरफ़ लपेटते हुए धीरे से कहा|.... वह एक बहुत बड़े आँगन वाला घर था,.. उस आँगन के चारों तरफ़ कमरे ही कमरे थे, जिनके हर दरवाजे से एक-एक करके जनाज़े निकल रहे थे| मैं दुल्हन बनी कमरे में बैठी थी| शोर उठा...बारात आ गई...बारात आ गई| सभी भागे| इतना कहकर रूही रुक गई| उसने अपना माथा सहलाया| फिर? दूल्हे को घोड़े से उतारकर अंदर आँगन में पड़ी कुर्सी पर बैठाया गया| पता नहीं कहाँ से ढेर सारे लोग जमा हो गए| सब अजीब तरह से मुस्कुराते हुए एक-दूसरे को इशारा कर रहे थे...तभी ..... दूल्हे के चेहरे से सेहरा हटाया गया तो सब धक् से रह गए| सेहरे के पीछे इंसानी चेहरे की जगह सिर्फ़ एक फूल था| कई पंखुड़ियों वाला बड़ा-सा सफ़ेद फूल, जो नीचे की तरफ़ अपना डंठल झुकाए हुए था...उसको देख सब चीखे तो मैं भी खौफ़ से चीख़ पड़ी...मेरे चीखते ही जाने सब कहाँ गायब हो गए| बस,

जलती अगरबत्तियाँ और उनसे उठता धुआँ अजीब तरह से माहौल को धुंधलाने लगा|"[57] इस तरह के स्वप्न से सीधा एक आशय सामने आता है कि कोई स्त्री अपने पति की मौत को इतनी आसानी से कैसे ही स्वीकार कर ले| अतः यह स्वप्न उसके जीवन में बीते हुए सबसे दु:खद क्षण को बयाँ करता है| स्वप्न के प्रतीक की बात करें तो यहाँ रूही के स्वप्न में ऐसी कई चीजें हैं जैसे- सांप, फूल, डंठल(तना), दरवाजे, कमरा, घोड़ा आदि यौन प्रतीक है जिसका मनोविज्ञान में अलग-अलग अर्थ है जो यौन क्रिया को दर्शाता है| इस सन्दर्भ में 'नासिरा शर्मा' से हुई बात-चीत में वे इसे यौन प्रतीक न कहकर एक स्त्री के जीवन का सबसे दुखद क्षण के तौर पर देखा है| वे कहती हैं कि "फ्रॉयड ने जब अपना फलसफा दिया तो वो वहीं तक महदूद था, तब उन्होंने इतना सोचा नहीं था कि औरत बिओंड(Beound) अपने जिस्म के ज़िन्दगी को खोज लेगी|...आज औरत उससे आगे निकल गयी है|"[58]

अतः किसी भी उपन्यास में स्वप्न का प्रयोग पात्रों को और अधिक गहराई से दिखाने के लिए लेखक उन पात्रों के स्वप्न तक का सफर तय करता| इससे यह साबित होता है कि लेखक की कल्पना कितनी दूरगामी है| दरअसल स्वप्न अंतर्मन की पूर्ति के लिए देखा जाता है| लेकिन यहाँ उपरोक्त उदाहरण से और भी सच्चाई को तराशने का प्रयास किया गया है| साथ ही मनोवैज्ञानिकों के प्रतीकों के अर्थ से अलग उनकी अपनी कहानी का दर्द भी दिखलाई पड़ता है|

3.5 आत्महत्या की समस्या

आत्महत्या अर्थात् स्वयं की हत्या| फारसी में इसके समानार्थी "खुदकुशी शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ है खुद को मार डालना|"[59] समाजशास्त्रीय दार्शनिक (emile durkheim) दुर्खिम द्वरा आत्महत्या पर किया गया शोध कार्य आज भी सबसे ज्यादा प्रभावी माना जाता है| अपने शोध कार्य में छब्बीस हजार लोगों पर परीक्षण कर बताया कि आत्महत्या का मूल कारण समाज है न कि मनोविज्ञान| इन्होंने अपने शोध के द्वारा आत्महत्या के प्रकार को कुछ इस तरह बताया है| पहला अहम(Ego)-जिसमें व्यक्ति समाज से अलग-थलग महसूस करता है, दूसरा(Altruistic) इसमें व्यक्ति का समर्पित भाव को देखा गया अर्थात् जिसमें व्यक्ति समाज, धर्म, एवं किसी राजनीतिक कारण की वजह से जान दे देता है| इसमें आत्महत्या को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है| उदहारण के तौर पर हिन्दू संस्कृति में 'सती' को देख सकते हैं| और तीसरा अमानकता की स्थिति(anomic) में लोग ऐसा कदम उठाते हैं| यह परिस्थिति में एक बड़े सामाजिक बदलाव से उत्पन्न असमंजस का भाव आत्महत्या का कारण हो सकता है| जिनमें अवसाद, निराशा, कुंठा, घुटन, पक्षपात, यौन शोषण आदि को मानसिक स्तर की कमजोरी के तौर पर देखा गया जिसका कारण समाज है| विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक - "दुनिया भर में हर साल 70 लाख लोग आत्महत्या करते हैं, और इससे कई गुना ज्यादा लोग आत्महत्या करने की कोशिश करते हैं|"[60] यह समस्या 15-19 साल के युवाओं में चौथी सबसे बड़ी वजह के रूप में देखी गयी है| इसके अलावा मेडिकल वजह को भी आत्महत्या करने की और कई वजहों में से एक पाया गया है| वैश्विकरण का दौर के आने से लोगों को हर तरह की सुविधा तो प्राप्त हुई लेकिन इससे उत्पन्न कई हानिकारक पहलू को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता| अतः जब लोग अपने जीवन में जो कुछ प्राप्त करना चाहते हैं उसे प्राप्त नहीं कर पाते तो उनका मन अवसाद से भर जाता है और ऐसे में जीवन उपाय के रूप में आत्महत्या को चुनना वो बेहतर समझते हैं| इस तरह आत्महत्या

के कई कारणों को आंशिक रूप से लेखिकाओं ने अपने-अपने उपन्यासों में दिखाने का प्रयास किया है|

'कलिकथा वाया बाइपास' उपन्यास में लेखिका दो जगह आत्महत्या का आंशिक जिक्र करती हैं| एक दाढ़ीवाला बंगाली का जिसने गले में फांसी लगाकर आत्महत्या किया है| इसके पीछे के कारणों का उल्लेख उपन्यास में नहीं किया गया है| और दूसरा दो बंगाली युवा के माध्यम से आत्महत्या के प्रयास को दिखाया है| एक बंगाली युवती और युवक की बीच सड़क पर झगड़े और हाथापाई को देखकर किशोर बाबू हैरत में पड़ जाते हैं और उन दोनों से इसकी वजह पूछने लगते हैं तो युवती कहती है कि ये युवक विष खाना चाहता है - "उन्होंने रुककर उस नौजवान से बांग्ला में पूछा कि वह क्या कर रहा है? इस औरत की किस चीज को छुपा रहा है? क्यों नहीं उसे दे देता? तब उस औरत ने कहा- विष है, विष| देखिए न दादा, यह विष खाकर मरेगा| इससे यह बोतल छीन लीजिए|"[61] प्रेम को लेकर समाज की संकीर्ण सोच भी कई बार आत्महत्या की वजह बनती है| ऐसे में जरुरत है कि लोग अपने सोचने की प्रक्रिया को बदलें| आज युवा वर्ग जहाँ हर क्षेत्र में अपनी सफलताओं का लोहा मनवा रहा है वहीं इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि उनमें आत्महत्या की प्रवृत्ति भी सबसे ज्यादा दिखाई पड़ती है|

'पारिजात' उपन्यास में काज़िम की खुदकुशी रूही के लिए जितनी पीड़ादायक रही उससे ज्यादा खुद काज़िम को अपने जीवन को लेकर जो असहनीय पीड़ा थी उसे आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया| काज़िम को जब पता चला कि वह पिता बनने की भूमिका में उसकी उपस्थिति शून्य है तो उसे यह बात बर्दाश्त नहीं हुई और उसने आत्महत्या कर ली| इस तरह की बचकानी दिखने वाली समाज में कई ऐसी वजहें हैं जिसे समझना बहुत मुश्किल है| काज़िम के पास ऐसे कई बेहतर उपाय थे जो उसके पिता बनने के सुख की पूर्ति कर सकता था, लेकिन समाज के अप्रत्यक्ष दिखने वाले दबाव ने उसे यह रास्ता चुनने को मजबूर कर दिया है| आज के आधुनिक दौर में हर तरह की समस्याओं से लड़ने के उपाय समाज में मौजूद हैं लेकिन फिर भी लोग आज

आत्महत्या के रास्ते को क्यों चुनते हैं? आज समाज के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न है| इसी सन्दर्भ में 'प्रेमशंकर शुक्ल' अपनी कविता 'आत्महत्या' के माध्यम से समस्या की गहराई में उतर कर कहते हैं-

"असमय : / एक व्यक्ति की मौत / कर देती है कितना कुछ खत्म
कितनी हँसी-खुशी, स्वप्नों-उम्मीदों / का हो जाता है / अचानक अंत
आत्महत्या के पहले सब ओर से / हुआ होगा वह घोर निराश / अपने से भी
हुआ होगा निर्मम / संबलहीन |"[62]

'नाला सोपारा' उपन्यास में बिन्नी के प्रति समाज और परिवार का रवैया उसे निरर्थक महसूस कराता है, जिससे उसके मन में अवसाद घर कर लेता है| ऐसे में अपने शारीरिक दोष को लेकर बिन्नी का मन पूरी तरह से टूट कर बिखर जाता है| जब किसी व्यक्ति को उसके शारीरिक दोष की वजह से अपने समाज और परिवार से अलग-थलग कर दिया गया हो तो ऐसे में उसके मानसिक स्थिति को समझा जा सकता है| इस तरह समाज कई बार सीधे तौर पर ऐसी स्थिति का जिम्मेदार होता है| कच्ची उम्र में लोगों के ऐसे व्यवहार को सह पाना मामूली बात नहीं होती है| उपन्यास में एक तरफ पात्र के द्वारा आत्महत्या का रास्ता अपनाने के बारे में कुछ क्षण के लिए ही सही वो सोचता जरूर है लेकिन वहीं दूसरी तरफ उसे इससे लड़कर इसपर अपनी जीत हासिल करता हुआ भी दिखाते है| दरअसल यह सन्देश लोगों को मानसिक तौर पर मजबूत बनाने का काम करता है|

'क्याप' उपन्यास की 'उत्तरा', 'मोहनदास' उपन्यास का 'श्रीवर्द्धन', 'रेहन पर रग्घू' का 'ज्ञानदत्त चौबे', 'मुझे चाँद चाहिए' का 'हर्ष' इन सब की आत्महत्या समाज के दुर्व्यवस्था का परिणाम है| अतः आत्महत्या किसी भी समाज के लिए बेहद दु:खद और चिंता का विषय है|

सन्दर्भ सूची :

1. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द, पृष्ठ-9

2. वही, पृष्ठ-9

3. वही, पृष्ठ-9

4. वही, पृष्ठ-9

5. वही, पृष्ठ-9

6. वही, पृष्ठ-10

7. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ-19

8. वही, पृष्ठ-19

9. वही, पृष्ठ-19

10. बैजनाथ सिंघल, अलगाव दर्शन और साहित्य, पृष्ठ-176-77

11. oxford english dictionary, पृष्ठ-219

12. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-115

13. हीगल, सोसाइटी, पृष्ठ-27

14. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-56

15. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-5

16. वही, पृष्ठ-52

17. वही, पृष्ठ-62

18. वही, पृष्ठ-62

19. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-1

20. वही, पृष्ठ-17-18

21. वही, पृष्ठ-11

22. मृदुला गर्ग, मिलजुल मन, पृष्ठ-56

23. बच्चन सिंह, आधुनिका हिंदी आलोचना के बीज शब्द, पृष्ठ-9

24. चित्रा मुद्गल, नाला सोपारा, पृष्ठ-5

25. वही, पृष्ठ-30

26. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश(भाग-1), पृष्ठ-441

27. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-129

28. वही, पृष्ठ-129

29. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-29

30. वही, पृष्ठ-31

31. वही, पृष्ठ-32

32. वही, पृष्ठ-32-33

33. वही, पृष्ठ-35

34. वही, पृष्ठ-35

35. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-33

36. वही, पृष्ठ-33

37. वही, पृष्ठ-33

38. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-45

39. वही, पृष्ठ-154

40. वही, पृष्ठ-87-88

41. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-73

42. वही, पृष्ठ-136

43. मृदुला गर्ग, मिलजुल मन, पृष्ठ-29

44. वही, पृष्ठ-29

45. चित्रा मुद्गल, नाला सोपारा, पृष्ठ-47

46. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश(भाग-1), पृष्ठ-899

47. वही, पृष्ठ-899

48. फ्रॉयड, मनोविश्लेषण, पृष्ठ-141

49. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश (भाग-1), पृष्ठ-952

50. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-28-29

51.धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश(भाग-1), पृष्ठ-952

52. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-16

53. वही, पृष्ठ-72

54. वही, पृष्ठ-75

55. वही, पृष्ठ-116

56. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-44

57. वही, पृष्ठ-55

58. साक्षात्कार से (नासिरा शर्मा)

59. उर्दू-हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ-163

60. who.int./health-topics/suicide

61. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-84

62. hindisamay.com